आधुनिक कहानियाँ

विजयशंकर मल्ल

आधुनिक कहानियाँ

[विविध शैलियों की उत्कृष्ट हिंदी कहानियों का संकलन]

संपादक

विजयशंकर मल्ल, एम० ए०

प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स

चौक, बनारस

प्रथम संस्करण] १९५२ [मूल्य ३॥)

प्रकाशक
नंदकिशोर एण्ड ब्रदर्स
चौक बनारस

मुद्रक
ओम् प्रकाश कपूर
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी. ४०६७—०८

वक्तव्य

पाठ्यक्रम में निर्धारित नियमों का सतर्कता से पालन करते हुए एक विशेष शिक्षा-मूलक उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर कहानियों का यह संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है। संग्रह इस दृष्टि से किया गया है कि छात्रों को आधुनिक हिन्दी कहानी की विविध शैलियों का परिचय भी मिल जाय और उनके चरित्र-निर्माण में सहायता भी मिले। इन दोनों बातों का समान रूप से ध्यान रखा गया है।

कहानी की रचना-शैली और भाषा-शैली की विविधता का बोधक होने के साथ ही संकलित कहानियाँ साहित्यिक दृष्टि से भी विशिष्ट रचनाएँ हैं। कहानी की रचना-विधि की बारीकियों को समझने में इनसे पूरी सहायता मिलेगी। इसके साथ ही इस बात का भी पूरा ध्यान रखा गया है कि संकलित कहानियों की कलात्मकता इन्टर के विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुकूल हो और उनके लिए सहज-ग्राह्य हो।

इस संकलन की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी सभी रचनाएँ सुकुमारमति छात्रों की रुचि परिष्कृत कर उनके सबल चरित्र-निर्माण में पूर्ण योग देनेवाली हैं। इसमें वे ही कहानियाँ संकलित की गई हैं जो उच्चकोटि के नैतिक, चारित्रिक और सामाजिक आदर्श उपस्थित कर सकें। इन कहानियों के द्वारा सहानुभूति, देशप्रेम, उदारता और आत्मविश्वास आदि अनेक उदात्त भावों की शिक्षा उपदेशरूप में नहीं बल्कि संवेदनारूप में भी मिले, इसका विशेष विचार रखा गया है; क्योंकि जो उपदेश अनुभूति के माध्यम से प्राप्त होता है वही टिकाऊ होता है। इन कहानियों के द्वारा पाठकों को यह समझने में भी सहायता मिलेगी कि जीवन की सार्थकता किन बातों में है, जिसके फलस्वरूप उनका विवेक जाग्रत होगा, उनमें संयम और दृढ़ता और कर्मतत्परता आएगी।

कहानियों का क्रम इस दृष्टि से रखा गया है कि विषय और शैली का वैविध्य बना रहे, एक ही विषय या शैली की रचनाएँ एक साथ न आ जायँ। इससे एकरसता आने की आशंका थी। क्रम रखने में सरलता और क्लिष्टता का भी विचार रखा गया है।

प्रत्येक कहानी के आरंभ में जो टिप्पणी दी गई है उसमें भी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। उसमें क्रम से लेखक का संक्षिप्त जीवनवृत्त, उसकी सामान्य साहित्यिक विशेषताएँ और प्रस्तुत कहानी की संक्षिप्त सार्थक और सूत्र-रूप समीक्षा दी गई है।

'आधुनिक हिंदी कहानी' शीर्षक विशद प्रस्तावना में कहानी के तत्त्वों की सम्यक् विवेचना की गई है। अन्य साहित्यिक कथा-रूपों और प्राचीन आख्यायिका से नवीन कहानी का भेद बताकर उसकी अपनी विशेषताओं की ऐसी व्याख्या की गई है कि उससे छात्रों को कहानी के तत्त्व तो भली भाँति समझ में आ ही जायँगे, स्वयं कहानी लिखने में उन्हें सहायता भी मिल सकती है। यह प्रस्तावना इस दृष्टि से भी उनके काम की है। अन्त में आधुनिक कहानी का विकास-क्रम और उसकी वर्तमान प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है।

इस संकलन में जिन लेखकों और प्रकाशकों की महत्त्वपूर्ण कहानियाँ संगृहीत हैं उन सबके प्रति संपादक अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

—संपादक

अनुक्रम

———

आधुनिक कहानी

कथा-कहानी कहने-सुनने की प्रवृत्ति मानव-समाज में अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है। इसका सबसे प्राचीन रूप तो मौखिक रहा होगा और मौखिक रूप में कही जानेवाली कथा का मनोरंजक होना आवश्यक है। यह मनोरंजन कुछ तो कथावस्तु पर निर्भर रहा होगा और कुछ कथा सुनानेवाले की भावभंगिमा और वर्णन-प्रणाली पर। लोकप्रचलित इन कथाओं में वैचित्र्यपूर्ण घटनावली के वर्णन के अतिरिक्त मनुष्य के सुख-दुःख आशा-आकांक्षा का आभास देने वाले मार्मिक स्थल भी रहें होंगे। आगे चलकर ज्ञान और उपदेश का काम भी इनसे लिया जाने लगा होगा। कहानी का आदिम रूप यही लोक-कथा है जिसकी परंपरा अब भी जन-समाज के भीतर चल रही है।

प्राचीन कथा साहित्य

ऋग्वेद, ब्राह्मण और उपनिषद ग्रंथों में मिलनेवाली कथाएँ या रूपक-कथाएँ लिखित रूप में कहानी के प्राचीनतम रूप प्रस्तुत करती हैं। महाभारत, पुराण, पंचतंत्र, हितोपदेश और दशकुमार चरित आदि के आख्यान क्रमशः विकसित कथा-रूप हैं। जातक कथाएँ, नंदी सूत्र की जैन-कथाएँ, बृहत्कथा (जिसका संस्कृत रूपांतर बृहत्कथामंजरी और कथासरित्सागर के रूप में उपलब्ध है) अपभ्रंश का कथा-साहित्य आदि के रूप में भारतीय कथा-साहित्य का विशाल भाण्डार सुरक्षित है। कथा की यह परम्परा कई रूपों में संस्कृत साहित्य के भीतर विकसित होती रही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास में लिखते हैं कि 'कहानियों का चलन सभ्य-असभ्य सब जातियों में चला आ रहा है। सब जगह

उनका समावेश शिष्ट साहित्य के भीतर भी हुआ है। घटना-प्रधान और मार्मिक, उनके ये दो स्थूल भेद भी बहुत पुराने हैं और उनका मिश्रण भी। वृहत्कथा, बैतालपचीसी, सिंहासन बत्तीसी इत्यादि घटना-चक्र में रमानेवाली कथाओं की पुरानी पोथियाँ हैं। कादम्बरी, माधवानल, कामकन्दला, सीत-बसन्त इत्यादि वृत्त-वैचित्र्यपूर्ण होते हुए भी कथा के मार्मिक स्थलों में रमानेवाले भावप्रधान आख्यान हैं।......प्रथम में इतिवृत्त का प्रवाह मात्र अपेक्षित होता है; पर दूसरी कोटि की कहानियों में भिन्न-भिन्न स्थितियों का चित्रण या प्रत्यक्षीकरण भी पाया जाता है।' परियों और देवताओं या असुरों को लेकर लिखी गई विस्मय-जनक कहानियाँ या सहस्त्ररजनी चरित्र (अलिफलैला का अनुवाद) अथवा आगे चलकर फारसी की प्रेम कथाओं से प्रभावित होकर लिखी गई कहानियाँ भी ऊपर किये गए भेद के ही अन्तर्गत आ जाती हैं, रचना प्रणाली की दृष्टि से उनका अलग वर्ग बनाने की आवश्यकता नहीं।

प्राचीन और नवीन कहानी

आधुनिक कहानी में पुरानी कथा का कथा-तत्त्व अपने परिवर्तित रूप में अब भी वर्तमान है। पुरानी कहानियों में ज्ञान और उपदेश की प्रबल प्रवृत्ति पाई जाती है। वे सोद्देश्य रचनाएँ हैं। बाद को सहस्र रजनी चरित्र जैसी कुछ रचनाएँ और आईं जिनका लक्ष्य प्रधानतः मनोरंजन था पर ऐसी रचनाओं की प्रमुखता न हो पाई। पुरानी कहानियाँ सोद्देश्य कथाएँ हैं। इस दृष्टि से नई और पुरानी कहानियों में कोई तात्त्विक भेद नहीं दिखाई पड़ता। इसमें सन्देह नहीं कि कथा और उद्देश्य नई और पुरानी कहानियों के बहुत-कुछ समान रूप से आधार हैं पर इन दोनों में अन्तर भी बहुत बड़ा है। नई कहानी केवल सोद्देश्य ही नहीं होती, एक मार्मिक संवेदना से अनुप्राणित भी होती है। नई कहानी में उद्देश्य संवेदना के रूप में ही व्यक्त होता है, जहाँ वह उपदेश रूप में व्यक्त होता

है वहाँ कहानी की सारी मार्मिकता नष्ट हो जाती है। यह संवेदना व्यक्तिगत अनुभूति से प्राप्त होती है और लेखक के व्यक्तित्व के स्वरूप पर निर्भर करती है। इसलिए आधुनिक कहानी में लेखक के व्यक्तित्व का बहुत-कुछ वैसा ही महत्त्व माना जाता है जैसा व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध में। जो कहानी हमारे मर्म को नहीं छूती, हृदय को नहीं प्रभावित करती उसे साहित्य की दृष्टि से अच्छा स्थान नहीं दिया जा सकता। जो कथा-वस्तु इस संवेदना से हीन होगी वह आधुनिक कहानी के काम की नहीं।

पुरानी कथाओं में स्वाभाविकता-अस्वाभाविकता का कोई प्रश्न नहीं था। उनके पात्र देव-दानव, पशु-पक्षी सब हो सकते थे। अलौकिक घटनाओं की भी कमी न थी। ये कथाएँ भूतकाल की होती थीं और प्रायः 'बहुत दिन पहले की बात है...' या 'एक था राजा...' शैली पर लिखी जाती थीं। नई कहानियाँ मुख्य रूप से 'वर्तमान काल' में लिखी जाती हैं, पुरानी कहानियों की तरह 'भूतकाल' में बहुत कम। आज का संशयशील और तार्किक पाठक कथा की ऐसी घटनाओं पर कभी विश्वास नहीं कर सकता जो अलौकिक और असम्भावित हों। इसलिए अपनी कथा को विश्वसनीय और स्वाभाविक बनाने के लिए आज का कहानी-लेखक कई तरह के उपाय काम में लाता है। यदि उसे ऐतिहासिक या किसी दूसरे प्रकार की कहानी 'भूतकाल' में भी कहनी हो तो वह ऐसी भूमिका बाँधता है और इतिहासज्ञ की तरह ऐसे विवरण देता है कि पाठक को कहानी के चरित्रों और घटनाओं की सत्यता में पूरा विश्वास हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि आज का लेखक यथार्थ का वातावरण प्रस्तुत करने के लिए पूरा प्रयत्न करता है। यह यथार्थता का वातावरण बाह्य चित्रण के अतिरिक्त मनुष्य की अन्तः प्रकृति के चित्रण द्वारा भी लाया जाता है। मानव-मन की वृत्तियों की व्यंजना आधुनिक कहानियों की अपनी विशेषता है।

अधिकतर आधुनिक कहानी के पात्र मनुष्य होते हैं। मनुष्यों में भी

राजा नहीं, साधारण मनुष्य। अतः उनके सभी कार्यकलाप लौकिक होंगे। प्राचीन कथाओं में अलौकिकता के सन्निवेश से मनोनुकूल घटनावली की योजना करने और कथा को आगे बढ़ाने की स्वतन्त्रता थी। पर आधुनिक कहानियों में यह बात नहीं है इसलिए लेखक कभी-कभी संयोग (Coincidence) और आकस्मिकता (Chance) का सहारा लेकर कथा की योजना करते हैं। पर इनका उपयोग प्रत्यक्ष या स्पष्ट रूप में जितना ही कम हो उतना ही अच्छा।

कथावस्तु के संघटन की दृष्टि से भी नई और पुरानी कहानियों में एक बड़ा अन्तर है। प्राचीन कथा की घटनाएँ सुश्रृंखल होती थीं और एक के बाद दूसरी घटना क्रम से आती जाती थी पर आधुनिक कहानी में ऐसा नहीं होता या कम होता है। आधुनिक कहानी में लेखक मानव जीवन से सायास संचित उन्हीं सार्थक घटनाओं को ग्रहण करता है जो कम से कम समय में अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से अभिप्रेत संवेदना उत्पन्न कर सकें। इसके लिए उसे चुनी हुई घटनाओं को नए अनुक्रम से सजाकर उपस्थित करना पड़ता है। जो प्रसंग सबसे अधिक प्रभावपूर्ण और चरमसीमा या समाप्ति की ओर शीघ्रता से ले जाने में सहायक प्रतीत होता है उसी से अब प्रायः कहानी आरम्भ की जाती है। कभी कहानी अन्त से शुरू होती है, कभी मध्य से। कभी बीच की घटनाओं के अनुक्रम में ही उलट फेर कर दिया जाता है।

इस प्रकार आधुनिक कहानी दृष्टिकोण, कथावस्तु के संघटन, संवेदना और प्रभाव आदि की दृष्टि से पुरानी कथा से भिन्न हो जाती है।

कहानी और उपन्यास

आधुनिक कहानी अन्य साहित्यिक कथा-रूपों से भी अपने कलात्मक व्यक्तित्व के कारण अलग हो जाती है। उपन्यास और कहानी कथा की दृष्टि से मूलरूप में एक ही जाति की कला-सृष्टियाँ मानी जा सकती हैं पर अन्तर

उनमें पर्याप्त हैं। सबसे स्थूल अन्तर उनमें आकार का है और इसीलिए प्रयोजन का भी। उपन्यास में विस्तृत जीवन-परिस्थितियों का विशद चित्र होता है और कहानी में जीवन की किसी एक परिस्थिति की झलक। उपन्यास में मनुष्य को सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों के बीच में रखकर चित्रित किया जाता है पर कहानी में इतने सम्बन्ध सूत्रों के प्रसार का अवकाश नहीं होता। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ बहुत सी गौण कथाएँ भी जुड़ी रहती हैं, पर कहानी में केवल एक कथा होती है। उपन्यास की तरह कहानी में अधिक पात्र भी नहीं होते। समय और स्थान की कमी से तथा उद्देश्य की भिन्नता के कारण कहानी में चरित्र का विकास नहीं दिखाया जा सकता, केवल उसके किसी एक अंश की झलक दी जा सकती है। प्रभाव की दृष्टि से तो इन दोनों में महान् अन्तर है। उपन्यास में एकाधिक कथाएँ परिस्थितियाँ और पात्र होते हैं इसलिए उसके अन्त में सभी कार्यों और प्रवृत्तियों का एक सामूहिक प्रभाव (Cumulative effect) पाठक पर पड़ता है पर कहानी में एक प्रेरक-भाव, एक संवेदना, एक उद्देश्य और एक कथा होने से एक प्रभाव (Single effect) पड़ता है। इस एकनिष्ठता के कारण कहानी की संवेदना में जो तीव्रता आ जाती है वह उपन्यास में अलभ्य है।

कहानी और एकांकी

उपन्यास की अपेक्षा कहानी एकांकी नाटक तथा व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध के अधिक समीप है। आकार की लघुता के कारण एकांकी और कहानी की रचना-विधि और प्रभाव-सृष्टि बहुत कुछ मिलती जुलती है। इन दोनों में कोई एक मूल प्रेरक-भाव, एक संवेदना रहती है। कम से कम पात्र, एक परिस्थिति और कम से कम घटनाओं के द्वारा ये दोनों एक ही लक्ष्य पर पहुँचते हैं। कहानी की चरम सीमा, संवाद-विधान,

अन्विति-त्रय, सक्रियता आदि नाट्यतत्त्व ही हैं जिनका अपने ढंग से उपयोग करके आधुनिक कहानी-कला की दृष्टि से इतनी समृद्ध हो गई है। फिर भी इनमें पर्याप्त अन्तर है। एकांकी में वर्णन एकदम नहीं होता पर कहानी में वर्णन ही नहीं विवरण और विश्लेषण की भी कभी-कभी आवश्यकता आ पड़ती है। कहानी के लिए कभी कभी घटना उतनी आवश्यक नहीं होती जितनी नाटक के लिए। नाटक या एकांकी के संवाद भी अधिक सजीव और जोरदार होते हैं क्योंकि कहानीकार की तरह इसके लेखक को अपनी ओर से कुछ कहने की सुविधा नहीं होती। उसे सब कुछ कार्य और संवाद के द्वारा ही व्यक्त करना होता है। चरमसीमा और अन्विति-त्रय भी कहानी के लिए उतने जरूरी नहीं जितने एकांकी के लिए। कहानी अपेक्षाकृत अधिक साधारण विषय और कम मार्मिक परिस्थिति के द्वारा भी अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकती है।

कहानी और निबंध

आदि और अंत की योजना, संवेदना की एकनिष्ठता, लेखक के व्यक्तित्व और दृष्टिकोण तथा स्वरूप विन्यास की दृष्टि से निबंध और कहानी में बहुत कुछ एकता दिखाई देती है। कभी कभी किसी रचना में इन दोनों रचना प्रकारों की विशेषताएँ इस तरह मिली मालूम होती हैं कि उसको कहानी कहा जाय या निबंध—यह समस्या उपस्थित हो जाती है। 'राजा भोज का सपना' नामक निबंध को अब भी कहानी मानने वाले विद्यमान हैं। उग्र का 'बुढ़ापा' नामक' निबंध कहानियों के संग्रह 'मधुकरी' (प्रथम-संस्करण) में संकलित किया गया था और प्रेमचंद ने 'गल्परत्न' नामक कहानी संग्रह में भी उसे रखा था। जब से रायकृष्णदास और वाचस्पतिपाठक द्वारा संकलित 'इक्कीस कहानियाँ' में महादेवी जी के संस्मरण कहानी समझ कर संकलित किये गए तब से बहुत लोग उन्हें

कहानी लेखिकाओं के बीच भी बैठाने लगे हैं। इसी कहानी-संग्रह में सियारामशरण गुप्त का निबंध 'झूठ सच' भी संकलित है। पर इन दोनों रचना प्रकारों में पर्याप्त अंतर भी है। कहानी की नाटकीय रोचकता निबंध में नहीं होती और निबन्ध की गंभीर विचारोत्तेजक विदग्धता और विनोदमयता कहानी के लिए आवश्यक नहीं। विषयनिष्ठ निबन्ध में तो परिस्थितियोजना पर ध्यान दिये बिना उपदेश कथन की प्रबल प्रवृत्ति उसे आधुनिक कहानी से एकदम अलग कर देती है।

कहानी और रेखाचित्र

रेखाचित्र में किसी दृश्य का सजीव और मार्मिक वर्णन होता है। लेखक यह अनुभूत वर्णन एक दृष्टिकोण से करता है। वर्णन स्थिर या गत्वर दोनों तरह के दृश्य का हो सकता है पर इसमें कहानी का वह मूलप्रेरक भाव या विषय प्रधान नहीं होता जो कथावस्तु को कहानी का स्वरूप देता है। इसमें जीवन या जगत का वह खण्ड-चित्र होता है जो आसपास की परिस्थितियों से अलग कटकर स्वतन्त्र रूप से हमारे सामने आता है। इस संग्रह की 'दो बाँके' इसीलिए शुद्ध रेखाचित्र नहीं कहा जा सकता। वह आधा स्केच और आधा कहानी है।

आधुनिक कहानी और अन्य रचना प्रकारों से उसका साम्य-वैषम्य देख लेने के बाद अब कहानी का स्वरूप निर्धारण इन शब्दों में किया जा सकता है—कहानी एक ऐसी सहेतुक मनोरंजक गद्य-रचना है जिसमें थोड़े स्थान के भीतर मार्मिक परिस्थिति-कल्पना के द्वारा जीवन के किसी एक मार्मिक तथ्य की संवेदना प्रभावपूर्ण ढंग से व्यंजित की जाती है।

संग्रह और त्याग की कला

एक आलोचक के शब्दों में 'कहानी सबसे अधिक लचीला साहित्यिक रचना-प्रकार है।' इसकी कोई पूर्ण और अंतिम परिभाषा असम्भव

भी है और अनावश्यक भी। फिर भी सुविधा के लिए मोटे तौर पर उसका एक परिचय थोड़े शब्दों में ऊपर दिया गया है। इस से यह संकेत मिलता है कि कहानीलेखक के लिए संग्रह और त्याग का विवेक अत्यन्त आवश्यक है। उसके सामने न-जाने कितनी घटनाएँ, कितनी परिस्थितियाँ आती हैं पर अपनी चयन कुशलता से वह अपने काम की घटना या परिस्थिति चुन कर कल्पना के योग से अभिप्रेत वातावरण और प्रभाव की सृष्टि करता है। यह चुनाव उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

मूल प्रेरक-भाव

कोई भी घटना, परिस्थिति या कार्य लेखक के लिए अपने आप में, निरपेक्षरूप से, महत्त्व का नहीं होता। कहानी के लिए उनका महत्व होता है उस आशय या अभिप्राय के कारण जिसे वे व्यक्त करते हैं। एक ही घटना, परिस्थिति या कार्य का कोई लेखक कुछ अभिप्राय ग्रहण कर सकता है ओर 'कोई कुछ। फलतः एक ही घटना पर अनेक कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। इसलिए कहानी में लेखक के मूल प्रेरक माव, संवेदना या हेतु का बहुत बड़ा महत्त्व होता है यह विशेष ध्यान देने की बात है। इसे ही दूसरे शब्दों में कहानी का प्रतिपाद्य विषय कहा जाता है। यही कहानी का बीज है। यही कहानी की 'कथा' का प्रस्थान विंदु है। प्रेमचन्द की 'ईदगाह' कहानी की मुख्य बातें ये हैं—ईद के आगमन की प्रसन्नता, किसानों की दरिद्रता, बुढ़िया का वात्सल्य, हामिद के साथियों की 'सुख संपन्नता' और उसकी गरीबी, हामिद का संयम और विवेकपूर्ण कार्य—इन सब में से अंतिम कार्य ने लेखक को सर्वाधिक प्रभावित किया और कहानी का वर्तमान स्वरूप सामने आया। अन्य चार बातों में से एक एक पर विशेष ध्यान देने से कोई लेखक इसी घटनावली में से अलग अलग चार कहानियाँ तैयार कर सकता है।

अश्क की डाची कहानी को ही ले लीजिए। इसमें डाची रजिया की

लालसा का प्रतीक है। उसी लालसा को पूरा करने के प्रयत्न में पूरी कहानी बन गई। १. रजिया की लालसा पूरी करने के लिए बाकर का जीतोड़ मिहनतकर रूपये इकठ्ठा करना २. नन्दू और बाकर के बीच डाची का मोल-भाव ३ बशीरमाल का डाची को बीच ही में हथिया लेना—कहानी की ये कुछ मुख्य घटनाएँ हैं। यदि इनमें से पहली घटना लेखक को सबसे अधिक प्रभावित करती और वह इसी से प्रेरित होकर कहानी लिखता तो वह विस्तार से इसी प्रसंग का वर्णन करता; ऐसी स्थिति में बाकर की मृत पत्नी के प्रभाव की भी शायद विशद व्यंजना होती और कहानी का दूसरा रूप हो जाता। इसके द्वारा केवल पिता के वात्सल्य की व्यंजना होती। बाकर की मृत पत्नी की स्मृति से लेखक यदि सर्वाधिक प्रभावित होता और उसका उद्देश्य बाकर का पत्नी-प्रेम दिखलाना ही होता तो कहानी एक तीसरा रूप ले लेती।

कहानी का मूलभाव बदल जाने से कथावस्तु के संघटन का रूप बदल जाना भी सम्भव है। 'डाची' बीच से शुरू होती है, दूसरी दशा में शायद आरम्भ, मध्य और अन्त कीं घटनाएँ पूर्वापर क्रम से आतीं।

'पुरस्कार' नाम की कहानी में लेखक दो भावनाओं या एक ही भाव के दो स्वरूपों से समान रूप से प्रभावित हुआ है। यहाँ मूल प्रेरक-भाव है व्यक्तिगत प्रेम और कुलमर्यादा की भावना से पुष्ट देशप्रेम का द्वन्द्व। यदि लेखक मधूलिका के केवल व्यक्तिगत प्रेम से अधिक प्रभावित होता तो इसी कथावस्तु के आधार पर एक दूसरी ही कहानी बन जाती।

इसलिए यह निरापद रूप से कहा जा सकता है कि कहानी की मौलिकता स्थूल कथा-वस्तु पर उतना निर्भर नहीं करती जितना कहानी के मूल-प्रेरक भाव पर। किसी अँगरेज लेखक ने एक बार (शायद विनोद में) कहा था कि आधुनिक सारी अँगरेजी कहानियों में केवल चौदह प्लाट हैं—इन्हीं के आधार पर इतनी कहानियाँ बन गईं ! यह

विनोदपूर्ण कथन एक बहुत बड़े तथ्य की ओर संकेत करता है। एक युवक और युवती में प्रेम होता है—प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं—वे एक-दूसरे से विवाह नहीं कर पाते—दोनों का जीवन दुःखमय हो जाता है। यह एक कथावस्तु है पर मूल प्रेरक-भाव की भिन्नता से इसी कथा को लेकर न जाने कितनी मौलिक कहानियाँ लिखी गई होंगी।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कहनी के मूल प्रेरक-भाव या हेतु और उपदेश में अन्तर है। कहानी का मूल प्रेरक-भाव या हेतु संवेदना रूप में होता है। इसका सम्बन्ध अनुभूति या हृदय से होता है। उपदेश का संबंध विवेक बुद्धि से होता है। जब कहानी का हेतु या उद्देश्य संवेदना रूप में व्यंजित होता है तभी वह कलानुरूप और प्रभावोत्पादक होता है। जब वह उपदेश रूप में व्यक्त होता है तब उसकी सारी मार्मिकता नष्ट हो जाती है। उपदेशांश संवेदना रूप में ही व्यक्त होकर कहानी की मार्मिकता बनाए रख सकता है।

कहानी का ढाँचा या कथावस्तु

लेखक जब किसी घटना, भाव या व्यक्ति से प्रभावित होता है तो इस प्रभाव को व्यक्त करने के लिए अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायक थोड़े से कार्यों को चुनकर, एक मार्मिक परिस्थिति की कल्पना करके कहानी की कथावस्तु तैयार करता है। कथावस्तु पाठक की उत्सुकता को निर्धारित दिशा में आगे बढ़ाकर अन्तिम उद्देश्य तक पहुँचाने का साधन है। उसमें क्रमबद्धता और मौलिकता तथा मनोरंजन का गुण आवश्यक है। क्रमबद्धता का तात्पर्य केवल यही है कि लेखक कथावस्तु की घटनाओं या कार्यों को एक ऐसे अनुक्रम से सजाता है जिससे पाठक की उत्सुकता बराबर बनी रहे और कथा क्षिप्रगति से समाप्ति की ओर बढ़े। कथावस्तु की योजना में लेखक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि पाठक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहे, बल्कि क्रमशः वह बढ़ती

जाय। कहानी और साधारण वृत्त-कथन में यह अन्तर होता है कि वृत्त-कथन में तो घटनाओं का एक सिलसिले से लगातार वर्णन होता है पर कहानी में थोड़े से चुने हुए मार्मिक दृश्यों को एक नये अनुक्रम से सजा कर कथा को समाप्ति तक ले जाया जाता और अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। कथा में जो स्थान लेखक को सर्वाधिक आकर्षक और कुतूहलवर्द्धक प्रतीत होता है वहीं से वह कहानी शुरू करता है, यह आवश्यक नहीं कि वह पूर्वापर क्रम से कथा कहे। इसका कोई नियम नहीं निर्धारित किया जा सकता। इस संग्रह की 'डाची' बीच से शुरू हुई है, 'उसने कहा था' में घटनावली का उलट-फेर एक दूसरे ही ढंग से किया गया है (देखिए टिप्पणी), 'पुलिस की सीटी' अन्त से शुरू हुई है। 'ईदगाह' 'अँधेरी दुनिया' 'पढ़ाई' आदि में बहुत कुछ पूर्वापर क्रम से घटनाएँ आई हैं।

कहानी की कथा-वस्तु सरल होती है, जटिल नहीं। उसमें एक से अधिक कथाएँ नहीं होतीं। मूलप्रेरक-भाव से नियन्त्रित होने के कारण तथा उद्देश्य और प्रभाव की एकनिष्ठता के कारण ही कथा-वस्तु में सरलता आती है। कहानी के अन्त में मूल प्रेरक-भाव की व्यंजना होती है, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि कहानी का अन्त ही कथा का मार्ग निर्धारित करता है। कहानी के प्रत्येक शब्द, कार्य और संवाद को कथा को अन्त की ओर शीघ्रता से ले जाने में सहायक होना चाहिए।

कथा-वस्तु में चरम-सीमा की योजना हो सकती है और इससे कहानी की प्रभावमयता बढ़ाने में सहायता ली जा सकती है पर कहानी के लिए इसे अनिवार्य नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि उपन्यास और कहानी की चरम-सीमा में अन्तर होता है। उपन्यास में चरम-सीमा का विधान कई स्थलों पर हो सकता है। उसमें पाठक की उत्सुकता को धीरे-धीरे चरम-सीमा पर पहुँचाकर उसका उतार भी दिखाया जाता है पर कहानी में इसका अवसर नहीं होता।

उसमें एक ही चरम सीमा का स्थल होता है और वहाँ पाठक को पहुँचाकर लेखक छोड़ देता है—कल्पना करने के लिए। उसका उतार दिखाने का अवकाश उसे नहीं। कहानी में चरम-सीमा का मतलब यही है कि पाठक की उत्सुकता को क्रमशः उच्चतम विन्दु तक पहुँचा दिया जाय। यही बात नाटक की तीनों (समय, स्थान और कार्य) अन्वितियों के विषय में भी समझनी चाहिए। बहुत सी कहानियों में इनके द्वारा विशेषता उत्पन्न की जाती है पर बहुत सी इनके बिना भी अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करती हैं। इसलिए इन नाटकीय तत्वों के विधान से जो आकर्षण आ जाता है उसका विचार तो होना चाहिए पर इन्हें अनिवार्य समझना ठीक नहीं।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, कथावस्तु का असली उद्देश्य कहानी के अन्त तक मूलभाव में पाठक का आकर्षण बनाए रखना है। यदि कोई लेखक कथावस्तु के संघटन सम्बन्धी प्रचलित नियमों का उल्लंघन कर नए ढंग से कथावस्तु की योजना करता है तो इसका उसे अधिकार है, यदि वह कहानी के अन्त तक मूलभाव या प्रतिपाद्य विषय में पाठक का आकर्षण बनाए रख सके और अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सके।

कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी गई हैं जिनमें कथावस्तु और घटनाओं या कार्यों का स्थान एकदम नगण्य है, बल्कि 'कथा' या 'कार्य' उनमें है ही नहीं। जैसे भगवतीचरण वर्मा का 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' नामकी की कहानी। इस संग्रह की 'दो बाँके' कहानी में कार्य तो थोड़ा बहुत है पर कथा नगण्य है।

कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी गई हैं जिनमें कथा की घटनाओं की कार्य-कारण शृंखला पर नहीं या बहुत कम ध्यान दिया गया है। दो व्यक्तियों में प्रेम हुआ, प्रेम उभयपक्ष में विकसित हुआ, अन्त में बहुत-सी कठिनाइयों को पार कर दोनों का विवाह हुआ। यहाँ प्रेम का उद्भव कारण है और विवाह कार्य। पर प्रेमोद्भव और विवाह के

बीच में भी एक चीज है—प्रेम का विकास, जो मस्तिष्क या साहित्यिक शब्दों में हृदय का एक व्यापार है। कुछ लेखकों को स्थूल कार्य-कारण नहीं वरन् मानव-मन की यह भीतरी क्रिया अधिक प्रभावित करती है। उनकी कहानी में कार्य-कारण की शृंखला से युक्त कथा नहीं इस मानसिक व्यापार का भावात्मक वर्णन ही मुख्य होता है। इनमें प्रचलित अर्थ की 'कथा' होती ही नहीं। भावात्मक और इस वैज्ञानिक युग की मनोवैज्ञानिक कहानियाँ इसी प्रवृत्ति का परिणाम हैं। इनमें प्रचलित अर्थ में 'कथा' नहीं होती या होती भी है तो एक दूसरे ही रूप में।

आधुनिक कहानी में आदि और अन्त के विधान में काफी सतर्कता रखी जाती है। कहानी का आरंभ आकर्षक होना चाहिए। आकर्षक आरम्भ के लिए कई तरह के ढंग अपनाये जा सकते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक ढंग ही सबसे अच्छा है। अधिकतर आधुनिक कहानी में भूमिका या प्रस्तावना नहीं रहती। लेखक पाठक को सीधे कथा की घटनावली तक पहुँचा देता है। पर कुछ कहानियाँ ऐसी भी होती हैं जिनके आरम्भ का सारा आकर्षण उनकी सजीव प्रस्तावना में रहता है—'दो बाँके' का आरम्भ ऐसा ही है। सम्वाद या कार्य के द्वारा नाटकीय आरंभ विशेष आकर्षक होता है। 'कानों में कँगना' और 'माता का हृदय' का आरम्भ पहले ढंग का है तथा 'पुलिस की सीटी' का आरम्भ दूसरे प्रकार का। कभी-कभी कहानी बीच या अन्त से शुरू करके लेखक आरम्भ में आकर्षण लाता है। 'डाची' पहले का उदाहरण है और 'पुलिस की सीटी' दूसरे का। वर्णनात्मक ढंग से भी कहानी शुरू की जाती है जैसे 'ईदगाह' या 'अँधेरी दुनिया' या 'उसने कहा था' में। इस प्रकार इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है पर प्रत्येक स्थिति में कहानी का आरम्भ रोचक सरल, अर्थपूर्ण और स्पष्ट होना चाहिए।

अन्त कहानी का प्रभावपूर्ण और व्यंजक होना चाहिए। उपदेशात्मक या वर्णनात्मक अन्त कभी अच्छा नहीं होता। चरमसीमा पर समाप्त होने

से कहानी की प्रभावमयता बहुत बढ़ जाती है, जैसे 'पुरस्कार' में। 'डाची' 'उसने कहा था' 'सोमा का साहस' 'ईदगाह' और 'पुलिस की सीटी' आदि कहानियों के अन्त बहुत अच्छे हुए हैं। इन सबके अपने-अपने ढंग हैं।

पात्र या चरित्र

कहानी के पात्र मूलभाव को व्यक्त करने के साधन हैं। उनके व्यक्तित्व की वे ही बातें यहाँ प्रकट की जाती हैं जिनसे कहानी का प्रतिपाद्य विषय व्यंजित होने में सहायता मिलती है। पात्रों की प्रवृत्ति और कार्य का निर्धारण कहानी के मूल-भाव से होता है। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि पात्र निर्जीव कठपुतली होते हैं। लेखक उन्हें इस ढंग से उपस्थित करता है कि वे पूरे सजीव और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

पात्र और कथावस्तु का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। ये दोनों ही कहानी के मूलभाव को व्यक्त करने के साधन हैं। कहानी की घटनाएँ तीव्र गति से जिस मूलभाव या उद्देश्य की ओर बढ़ती हैं उसी की ओर पात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ भी प्रेरित करती हैं। ये दोनों ही तेजी से एक ही विन्दु पर पहुँचते हैं।

कहानी के पात्र दो प्रकार के होते हैं—अपरिवर्तनशील और परिवर्तनशील। तीसरे तरह के पात्र जटिल कहे जा सकते हैं जो आजकल की मनोवैज्ञानिक कहानियों में दिखाई पड़ते हैं।

कहानी में चरित्र-चित्रण का केवल इतना ही अर्थ है कि इसमें पात्र के जीवन की एक झलक रहती है। प्रस्तुत परिस्थिति में पड़ कर उसकी जो प्रवृत्ति प्रस्फुट होती है, केवल उसीका चित्रण कहानी में होता है। कहानी में चरित्र का विकास नहीं दिखाया जा सकता, इसका अवकाश उपन्यास में ही मिल सकता है। कहानी में तो अधिक से अधिक चरित्र के जीवन में परिवर्तन की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है या आकस्मिक परिवर्तन दिखाया जा सकता है।

पात्र के जीवन में संघर्ष दिखाकर कुछ लेखक उसके व्यक्तित्व में बड़ी सजीवता ला देते हैं। यह 'संघर्ष' का तत्त्व नाटकों से लिया गया है। यह संघर्ष या द्वन्द्व कहीं तो व्यक्ति और बाह्य परिस्थितियों के बीच, कहीं व्यक्ति और व्यक्ति के बीच तथा कहीं एक ही व्यक्ति के दो विचारों या भावों के बीच दिखाया जाता है। अन्तिम प्रकार का संघर्ष जिसे अन्तर्द्वन्द्व कहा जा सकता है, आधुनिक कहानी की एक विशेषता है। 'पुरस्कार' की मधूलिका में इस तत्त्व का अच्छा विधान हुआ है।

चरित्र-चित्रण की तीन प्रणालियाँ कहानियों में देखी जाती हैं—वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और नाटकीय। वर्णनात्मक प्रणाली में लेखक किसी चरित्र की विशेषताओं का वर्णन करता है। विश्लेषणात्मक ढंग वह है जिसमें स्वयं लेखक पात्र की मनःस्थिति का विश्लेषण करके उसकी चरित्रगत विशेषताएँ व्यक्त करता है। चरित्र-चित्रण की नाटकीय प्रणाली उसे कहते हैं जिसमें संवादों और कार्यों के द्वारा ही व्यंजित होकर पात्र का व्यक्तित्व प्रकाश में आता है। इस प्रसंग में भी किसी एक प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ कहना निरापद नहीं है पर सामान्यतः नाटकीय प्रणाली विशेष अच्छी मानी जाती है। वास्तव में अधिकांश कहानियों में इन सब प्रणालियों का संयोग होता है।

ऊपर जिन तीन तत्त्वों—मूलभाव, कथावस्तु और चरित्र-चित्रण का विचार किया गया है वे ही कहानी के आधरभूत तत्त्व हैं। पर कहानी के कथोपकथन, देशकाल और भाषाशैली का अलग से विचार करने का प्रचलन है, यद्यपि 'चरित्र-चित्रण' के प्रसंग के भीतर कथोपकथन और 'कथा-वस्तु' के साथ ही देशकाल का विचार किया जा सकता है।

कथोपकथन

कथोपकथन कहानी का छोटा, स्वाभाविक और प्रभविष्णु होता है। उसका प्रत्येक शब्द सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिए। बड़े संवादों के

लिए कहानी में स्थान नहीं होता। कहानी के कथोपकथन ऐसे न होने चाहिए जो स्वतन्त्र रूप से पाठक का ध्यान आकृष्ट कर उसे बिलमाते चलें या कथा के प्रवाह में किसी प्रकार का विक्षेप डालें।

प्रेमचंद के शब्दों में 'निर्जीव कथोपकथन वे होते हैं जिनमें······दो व्यक्ति नहीं, सिर्फ दो 'मुँह'······केवल बोलते हैं।' इसका तात्पर्य यही है कि कहानी का संवाद व्यक्ति और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए। हर आदमी का बातचीत करने का एक अपना ढंग होता है। उसके शब्द प्रयोग, उच्चारण और वाक्य विन्यास आदि में कुछ न कुछ भेदक विशेषता होती है। यही वैशिष्ट्य कथोपकथन को स्वाभाविकता प्रदान करता है। मानसिक गठन या मानसिक स्तर मनुष्य का जैसा होता है, उसकी बातचीत भी वैसी ही होती है। संवाद-योजना पर विचार करते समय उस परिस्थिति का भी ध्यान आवश्यक है जिसमें कथोपकथन हुए हैं। परिस्थितियों के अनुसार ही मनुष्य बात करता है।

प्रभविष्णुता से अभिप्राय यह है कि कहानी के भीतर ही कथोपकथन का असर भी पाठक को दिखाई पड़ जाय। यथार्थता का वातावरण उपस्थित करने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। जब कोई किसी से बात करता है तो सुननेवाले पर उसका कुछ असर होता है, वह पूर्ववत नहीं बना रहता। उसके मन पर सुनी हुई बात का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, उसकी चेष्टा और मुद्रा पर उसके प्रभाव की छाप होती है और वह जो उत्तर देता है उससे इन सबका कुछ संकेत मिलता है। उत्तर-प्रत्युत्तर का ऐसा ही विधान कहानी के लिए अपेक्षित है।

वातावरण

वह देशकाल और परिस्थितियाँ जो कहानी के पात्र के जीवन पर प्रभाव डालनेवाली होती हैं, कहानी का वातावरण कहलाती हैं। इस वातावरण की स्वाभाविक सृष्टि पर कहानी की सफलता बहुत कुछ

निर्भर करती है। पर यह सृष्टि औपन्यासिक सृष्टि से भिन्न होती है। कहानी लेखक थोड़े शब्दों में, थोड़े स्थान के भीतर, संकेत से देशकाल की विशेषताएँ व्यक्त करता चलता है, अलग से उनका विस्तृत वर्णन नहीं करता। बीच बीच में संक्षिप्त वर्णनों के द्वारा और अधिकतर पात्रों की बातचीत और उनके कार्यकलाप के द्वारा वह समय, स्थान और परिस्थिति का परोक्ष रूप से पता देता चलता है। वातावरण कभी ऐसा न होना चाहिए जो स्वतन्त्र रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट कर ले और कथा की गतिशीलता में व्याघात पहुँचे—जैसे चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की अधिकांश कहानियों में और 'प्रसाद' की कुछ कहानियों में।

समय और स्थान का परिचय सामाजिक रीति-नीति के संकेत द्वारा भी दिया जाता है और प्राकृतिक दृश्य के चित्रण द्वारा भो। पर इनमें से किसी का विस्तृत वर्णन नहीं होता, हाँ यदि लेखक का लक्ष्य केवल वातावरण विशेष की सृष्टि ही हो तो बात दूसरी है।

भाषा-शैली

कहानी की गणना मनोरंजक साहित्य के अन्तर्गत होती है। कहानी की रंजकता उसकी भाषा-शैली पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में कोई स्थिर नियम नहीं निर्दिष्ट किये जा सकते। पर सरलता उसमें होनी चाहिए। कहानी में थोड़े स्थान में सब कुछ कहना होता है इसलिए उसकी भाषा में व्यंजकता और एक तरह की कसावट होनी चाहिए। वर्णनों में रोचकता और सजीवता भी आवश्यक है। शब्दों का अपव्यय या शैली की शिथिलता कहानी में सबसे अधिक अखरती है। उत्कृष्ट कहानी की भाषा सरल, रोचक और व्यंजनापूर्ण होती है। शैली की सफलता कहानी की घटनाओं का तारतम्य इस तरह बैठाने में है कि पाठक की उत्सुकता क्रमशः बढ़ती जाय और कथा शीघ्रता से मूलभाव या उद्देश्य की ओर अग्रसर हो।

वर्गीकरण—कहानी-तत्त्व की दृष्टि से

कहानियों के वर्गीकरण कई तरह से किये जा सकते हैं पर प्रधान रूप से उसके वर्गीकरण के दो प्रकार हैं। एक तो कहानी-तत्त्वों की दृष्टि से और दूसरे लेखन-शैली की दृष्टि से। कहानी में यद्यपि पहले कहे गए प्रायः सभी तत्त्व किसी न किसी रूप में वर्तमान रहते हैं पर किसी कहानी में किसी तत्त्व की प्रधानता होती है और किसी में किसी की। यह बात लेखक की अनुभूति के ढंग पर निर्भर करती है। लेखक कहीं घटना से, कहीं व्यक्ति के चरित्र से, कहीं किसी एक मार्मिक भाव से और कहीं स्थान की रमणीयता से विशेष प्रभावित होता है, फलतः कोई कहानी घटनाप्रधान होती है, कोई चरित्रप्रधान, कोई भावप्रधान और कोई वर्णनप्रधान।

घटनाप्रधान कहानी में कौतूहलपूर्ण घटना या घटनाओं की योजना पर विशेष दृष्टि रखी जाती है। इसमें चरित्र-चित्रण पर ध्यान नहीं रहता। सारा आकर्षण घटना के आगे बढ़ते चलने और अंत में रहस्य का उद्घाटन होने या कोई रोचक परिवर्तन उपस्थित होने में ही रहता है। जासूसी कहानियाँ इसी ढंग की होती हैं। ज्वालादत्त शर्मा की अधिकांश कहानियाँ ऐसी ही हैं। साहित्य में ऐसी कहानियों का ऊँचा स्थान नहीं माना जाता।

चरित्रप्रधान कहानी में मानव-चरित्र की किसी एक विशेषता की झलक रहती है। किसी विशेष परिस्थिति में पड़ने पर मनुष्य की क्या मानसिक स्थिति होती है और उसके व्यक्तित्व की कौन सी विशेषता सामने आती है—इसी के चित्रण पर लेखक का ध्यान केंद्रित रहता है। ऐसी कहानी में मनुष्य के चरित्र के किसी एक अंश की मार्मिक झलक रहती है। हिन्दी की अधिकांश सुन्दर कहानियाँ ऐसी ही हैं।

भावप्रधान कहानियाँ वे हैं जिनमें किसी मार्मिक अनुभूति से प्रेरित

होकर लेखक एक विशेष प्रभाव की सृष्टि करता है। घटना और चरित्र की योजना भाव-विशेष, या एक निश्चित विन्दु की ओर अग्रसर भाव-समूह को व्यंजित करने के ही उद्देश्य से होती है, अलग से उनका कोई आकर्षण नहीं होता। प्रसाद और राधिकारमण सिंह की बहुत-सी कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

वर्णनात्मक कहानियों में कथा की गति, घटना के अग्रसर होने या चरित्र की सजीवता की ओर ध्यान न देकर लेखक दृश्य-वर्णन में बार-बार तल्लीन हो जाया करता है। वास्तव में आधुनिक अर्थ में ऐसी रचनाओं को कभी कभी कहानी कहना भी कठिन हो जाता है। चंडीप्रसाद हृदयेश की कहानियाँ ऐसी ही हैं।

कहानी के दो रूप और प्रचलित हैं जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। ऐसी रचनाओं में लेखक का उद्देश्य किसी सत्य की व्यंजना या नैतिक तथ्य का उद्घाटन मात्र रहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह स्वल्प घटनाओं से संक्षिप्त कथा तैयार करता है। इसमें घटना या पात्र की स्वाभाविकता अस्वाभाविकता का प्रश्न ही नहीं होता। जिस तथ्य या सत्य की अभिव्यक्ति वह करना चाहता है केवल उसी की मार्मिकता पर ऐसी कहानी की सफलता निर्भर करती है। ऐसी कहानी के दो शैली रूप मिलते हैं—पौराणिक शैली (या उससे मिलती-जुलती) और प्रतीकात्मक शैली। पहले ढंग की कहानी सुदर्शन रचित 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' है और दूसरे ढंग की 'उग्र' की 'भुनगा।' ऐसी कहानी का आकार बहुत छोटा होता है।

वर्गीकरण—लेखन-प्रणाली की दृष्टि से

लेखन-प्रणाली की दृष्टि से कहानियों का वर्गीकरण कई तरह से किया जा सकता है। सबसे सुविधाजनक और प्रचलित वर्गीकरण यह है—ऐतिहासिक प्रणाली, आत्मकथात्मक प्रणाली, पत्रात्मक प्रणाली। इसके अतिरिक्त दो प्रणालियाँ और हैं, डायरी प्रणाली और संवादात्मक प्रणाली।

ऐतिहासिक प्रणाली उस कहानी की होती है जिसमें लेखक इतिहासकार की तरह तटस्थ रहकर सारी कहानी कहता है। कहानी की यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। इसमें लेखक को पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है और सर्वज्ञ की भाँति वह घटनाओं और पात्रों का वर्णन करता है। पर अपनी इस 'सर्वज्ञता' को पाठक पर कभी इस रूप में प्रकट नहीं होने देता कि अस्वाभाविकता आ जाय।

आत्मकथात्मक प्रणाली में पात्र अपनी कथा स्वयं कहता है। इसमें 'मैं' शैली का प्रयोग होता है। मनःस्थिति के विश्लेषण या विस्तृत उद्घाटन के लिए यह प्रणाली विशेष उपयुक्त है। सुदर्शनकी 'अँधेरी दुनिया' आत्मकथात्मक प्रणाली का एक सुंदर उदाहरण है। इस शैली में भी हिन्दी में काफी कहानियाँ लिखी गई हैं। इस तरह की कहानियों में विषयान्तर होने और वक्ता की आत्मश्लाघा प्रकट होने की आशंका अधिक रहती है। कहीं तो स्वयं लेखक प्रधान प्रात्र के रूप में कहानी कहता है, कहीं कहानी का प्रधान पात्र स्वतन्त्र रूप से अपने जीवन की घटनाएँ कहता है और कहीं विभिन्न पात्र अलग अलग अपनी अपनी कथा कहते हैं।

पत्रात्मक प्रणाली में सारी कहानी पत्रों के द्वारा कही जाती है। इस संग्रह की 'चिठ्ठी-पत्री' ऐसी ही कहानी है। दो पात्रों के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में पत्रों की योजना विशेष आकर्षक होती है क्योंकि इसमें मानवीय सम्बन्धों और मानसिक प्रतिक्रियाओं का विशेष संवेद्य रूप विशेष अपनत्वपूर्ण ढंग से प्रायः अकृत्रिम रूप में प्रकट होता है। पाठक की उत्सुकता की तीव्रता भी इससे बराबर बनी रहती है। उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में कथा का विकास आकर्षक होता है। पत्रों में आत्मविश्लेषण का आधिक्य रहने से इस बात की आशंका ऐसी कहानी में अवश्य रहती है कि लेखक कहीं अनावश्यक विस्तार न कर दे। मूल कथा का सूत्र छितरा न जा जाय, इसका ध्यान ऐसी कहानी में बराबर होना

चाहिए। पत्रों की अधिक लम्बाई भी स्वाभाविकता नष्ट कर देती है।

डायरी प्रणाली में हिन्दी में बहुत कम कहानियाँ लिखी गई हैं। पत्र तो दूसरे के लिए लिखे जाते हैं इसलिए उनमें कुछ नियन्त्रण तो रहता ही है पर डायरी में उसके लेखक की स्वतन्त्रता निर्बाध होती है। इस ढंग की कहानी में कथा की एकसूत्रता और उसकी गति में विक्षेप होने की अधिक आशंका होती है। भावुकता, बल्कि प्रायः झूठी भावुकता और भावाकुलता की विवृति की सम्भावना भी ऐसी कहानी में विशेष होती है। इन दोषों से रहित, इस प्रणाली पर लिखी गई सुदर्शन की 'कवि की स्त्री' एक उत्तम कहानी है। संवादात्मक कहानी हिन्दी में नहीं के बराबर हैं, यह कहानी की स्वाभाविक शैली हो भी नहीं सकती क्योंकि यह शैली अपने शुद्ध रूप में नाटक की चीज है। इस ढंग की एक कहानी प्रेमचन्द का 'जादू' है, पर उन्होंने इस शैली के और प्रयोग नहीं किये। वे मानते थे कि 'केवल बातचीत में कहानी अच्छी न होगी।'

आधुनिक कहानी का विकास

आधुनिक हिन्दी कहानी का आरम्भ सन् १९०० में, 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' इसी वर्ष प्रकाशित हुई। दूसरी मौलिक कहानी, बंगमहिला की लिखी 'दुलाईवाली', इसी पत्रिका में सन् १९०७ में निकली। 'दुलाईवाली' यद्यपि घटना-प्रधान कहानी है पर साधारण जीवन पर आधारित होने और यथार्थता का अधिक ध्यान रखने के कारण आधुनिक कहानी के अधिक निकट है। सन् १९११ में 'इंदु' पत्रिका में प्रसाद की 'ग्राम' और 'भारतमित्र' में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'सुखमय जीवन' नामक कहानियाँ छपीं—इनमें भी साधारण जीवन की ही परिस्थितियाँ ली गई हैं। पर वास्तव में ये सब प्रयोगकालीन कहानियाँ हैं। आरम्भ का १०–१२ वर्ष हिन्दी कहानी का प्रयोगकाल है।

इसके बाद थोड़े आगे पीछे जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, ज्वालाप्रसाद शर्मा, विश्वंभरनाथ जिज्जा और राधिकारमणप्रसाद सिंह की नए ढंग की कहानियाँ आती हैं जिनमें आधुनिक कहानियों के अपेक्षाकृत अधिक तत्त्व वर्तमान हैं। प्रसाद और कौशिक की कहानियाँ सही अर्थ में कहानी-साहित्य में नए युग का सूत्रपात करनेवाली हैं।

प्रसाद जी की अधिकांश कहानियाँ भावनामूलक हैं। इनमें अतीत और वर्तमान की विशद रसमयी परिस्थितियों के बीच पात्रों और घटनाओं का चित्रण हुआ है। वातावरण की सजीवता इनकी कहानियों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जिन कहानियों में नाटकीयता है वे भी अपने ढंग की अनूठी रचनाएँ हैं। भावात्मक कहानीकारों में राधिकारमण प्रसाद सिंह और चतुरसेन शास्त्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है, यद्यपि चतुरसेन शास्त्री ने सामाजिक कहानियाँ भी काफी लिखी हैं। चंडीप्रसाद हृदयेश की भावप्रधान शैली की वर्णनात्मक कहानियाँ भी ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

कौशिक की कहानियाँ सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। कहानी के उपयुक्त संवाद-योजना और चरित्र चित्रण इनकी रचनाओं में बहुत अच्छा हुआ है।

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द का आगमन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इनकी सामाजिक चेतना अत्यन्त व्यापक और गम्भीर थी। विविध परिस्थितियों में पड़े हुए मनुष्यों की मनोवृत्तियों की परख करने में ये पूर्ण कुशल थे। इन्होंने हिन्दी कथा साहित्य में अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित कर दिया। इनकी पहली हिन्दी कहानी 'पंचपरमेश्वर' सन् १९१६ में प्रकाशित हुई।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और सुदर्शन आदि की कहानियाँ भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन—ये सामाजिक और राजनीतिक कहानी लिखने वालों में अग्रगण्य हैं। उग्र की नग्न यथार्थ का

चित्रण करनेवाली सामाजिक कहानियाँ दूसरे ढंग की हैं। इनकी राजनीतिक कहानियाँ भी अत्यन्त भावमय हुई हैं। गद्यशैली इनकी हिन्दी में बेजोड़ है।

इस प्रकार हिन्दी की प्रयोगकालीन, भावात्मक और सामाजिक-राजनीतिक कहानियों का उल्लेख करने के बाद प्रगतिशील और मनोवैज्ञानिक कहानियों का परिचय दे देना उचित होगा। यहाँ केवल प्रवृत्तियों के संकेत से ही आधुनिक कहानियों के विकास का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है क्योंकि प्रत्येक कहानी के साथ वाली टिप्पणियों में प्रायः सभी प्रमुख लेखकों की विशेषताओं का परिचय अलग से दिया गया है अतः उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं दिखाई देती।

हिंदी की प्रगतिशील कहानियाँ प्रेमचन्द की ही परंपरा का बहुत-कुछ विकास कही जा सकती हैं पर इस विकसित रूप में प्रवृत्ति की दृष्टि से, उनमें पर्याप्त अन्तर आ गया है। इस तरह की कहानियों में सामाजिक समस्याओं का एक विशेष भौतिकवादी दृष्टि से चित्रण होता है और समाज की प्रगतिशील शक्तियों का स्पष्ट संकेत भी प्रभावपूर्ण ढंग से देने की चेष्टा रहती है। अधिकांश ऐसी रचनाएँ इस प्रबल सोद्देश्यता के कारण, कलात्मकता के अभाव में, एकदम प्रचार की भावना से आक्रान्त होकर निष्प्राण हो जाती हैं। पर बहुत सी प्रगतिशील कहानियाँ अत्यंत मार्मिक भी हुई हैं। नाटकीयता की जगह, कुछ रचनाओं में, विश्लेषण की प्रवृत्ति भी अधिक दिखाई देती है। यह विश्लेषणात्मक पद्धति भी, अपने संयत रूप में प्रभावशालिनी होती है, जैसे उपेन्द्रनाथ अश्क की रचनाओं में। दो विरोधी स्थितियों का वैषम्य (Contrast) दिखाकर प्रभाव उत्पन्न करना ऐसी कहानियों की एक बहुप्रचलित विशेषता है। दूसरी विशेषता इनकी व्यंगात्मकता है। प्रगतिशील कथाकारों में यशपाल शीर्षस्थानीय हैं। इनके अतिरिक्त अश्क, राधाकृष्ण और चन्द्रकिरण सौनरिक्सा भी ऐसे प्रगतिशील कहानीकार हैं जिनका वर्तमान कहानी साहित्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दी कहानियों का एक और रूप है—मनोवैज्ञानिक, जिस पर अलग से विचार करने की आवश्यकता है। इस तरह की कहानियों का आरंभ करनेवाले जैनेन्द्र हैं। जिस प्रकार प्रगतिशील कहानियों में सामाजिक तथ्यों की सहेतुक व्यंजना होती है उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक कहानियों में किसी मनोवैज्ञानिक तथ्य की। जैनेन्द्र की आरंभिक रचनाओं में मानव मन के रहस्यों का, उसके मस्तिष्क की विविध प्रतिक्रियाओं का अत्यन्त मार्मिक वर्णन हुआ है। बाद को उन्होंने असामान्य (abnormal) चरित्रों की ही मानसिक दशाओं का अधिक चित्रण करना शुरू किया और, और बाद को तो उनकी कहानियाँ दार्शनिक जंजाल में फँस गईं। पर इन्हें छोड़ दें और जैनेन्द्र को चुनी कहानियों का विचार करें तो वे किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ानेवाली प्रतीत होती हैं। दूसरे मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं अज्ञेय। उन्होंने कुछ सामाजिक और देशभक्तिपूर्ण राजनीतिक कहानियाँ भी लिखी हैं पर इनका असली महत्त्व मनोवैज्ञानिक कहानियों के कारण है। दूसरे इस तरह के लेखक इलाचन्द्र-जोशी हैं। ये लोग अधिकतर असामान्य पात्रों की मनोदशाओं का चित्रण करने में कुशल हैं। मनोविश्लेषण शास्त्र से अर्जित ज्ञान के बल पर इनकी कहानियों में मानसिक ग्रंथियों (Complexes) और अतृप्तकाम व्यक्तियों की विविध मनोदशाओं का चित्रण और विश्लेषण ही अधिक होता है। ऐति- हासिक विकास-क्रम की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक कहानियाँ शुद्ध प्रगतिशील कहानियों से पहले आती हैं।

वर्तमान कथाकारों में भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रायकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास, मोहनलाल महतो और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। कहानी लेखिकाओं में चन्द्रकिरण सौनरिक्सा के अतिरिक्त शिवरानी देवी, उषादेवी मित्रा, सुभद्राकुमारी चौहान और होमवती देवी का उल्लेख आवश्यक होगा।

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

[जोवन-काल सन् १८८९—१९३७ ई०]

पुरस्कार

प्रसाद जी का जन्म काशीके एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न वैश्य परिवार में हुआ। आरंभिक पढ़ाई घर पर और आठवें दर्जे तक क्वींस कालेज में हुई। बारह वर्ष की आयु में पिता का देहांत हो जाने से स्कूल की पढ़ाई छूट गई और घर पर ही अंगरेजी, संस्कृत और हिंदी आदि की शिक्षा मिली। अध्ययन और साहित्य-सर्जन की रुचि इन्हें किशोरावस्था से ही थी। आधुनिक हिंदी साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात करनेवाले साहित्य-स्रष्टाओं में हैं। ये उच्चकोटि के कवि और नाटककार तो हैं ही, उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में भी इनका कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ये परम भावुक, भारतीय संस्कृति की गौरव-भावना से अनुप्राणित, प्राचीन काल का जीता-जागता चित्र खींच देने में पूर्ण कुशल और रहस्यमय मानव-मन के विलक्षण पारखी साहित्यकार थे।

'पुरस्कार' में एक तेजस्विनी नारी के आत्मगौरव, त्याग, देशभक्ति और अपने प्रेमी के प्रति उत्तरदायित्व-निर्वाह का विस्मयकारक रूप उपस्थित किया गया है।

कहानी का आरंभ अत्यंत रमणीय दृश्यावली के बीच होता है—मनोरम प्राकृतिक वातावरण में गणतंत्रकालीन इन्द्रपूजन समारोह का दृश्य पाठक को सहसा अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। तत्कालीन रीतिरिवाज, साज-सज्जा आदि की सुंदर झलक देकर लेखक ने गौरव-

पूर्ण प्राचीन काल का एक सजीव चित्र अंकित कर दिया है। थोड़े शब्दों में रूप-चित्रण करने में भी लेखक की कुशलता द्रष्टव्य है।

इस कहानी में मधूलिका के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है। यह मानसिक द्वन्द्व प्रेम नामक एक ही मूल भाव के दो रूपों के बीच दिखाया गया है। वे दो रूप हैं—व्यक्तिगत प्रेम और जन्मभूमि प्रेम (जिसे कुलमर्यादा की रक्षा की भावना और पुष्ट बनाती है)। प्रबल व्यक्तिगत प्रेम (संकुचित भाव) पर स्वदेश-प्रेम (व्यापक भाव) की विजय होती है और अन्त में मधूलिका अपने प्रेमी के प्रति नारी-सुलभ उत्तरदायित्व का भी सुन्दर निर्वाह करती है। नारी-हृदय के इन गूढ़ भेदों का कलापूर्ण रहस्योद्घाटन चमत्कृत कर देनेवाला हुआ है। पात्रों के अंतर्द्वन्द्वों का चित्रण प्रसाद जी को बहुत प्रिय रहा है। 'आकाशदीप' कहानी की चम्पा और 'चंद्रगुप्त' नाटक की कल्याणी के अंतर्द्वन्द्वों के साथ मधूलिका की मानसिक उथल-पुथल की तुलना रोचक होगी। पात्रों की मानसिक स्थिति के साथ प्रकृति का सामंजस्य दिखाते चलना भी प्रसाद जी की एक विशेषता है, जो इस कहानी में देखी जा सकती है।

इनकी गद्यशैली परिष्कृत, व्यंजनापूर्ण और मर्मस्पर्शी भावुकता से सम्पन्न होती है। अलंकृत भाषा का सुविचारित प्रयोग प्रसाद जी की गद्य-शैली का महत्त्वपूर्ण आकर्षण है। नाटकीय ढङ्ग से, चरमसीमा (क्लाइमेक्स) पर समाप्त होने के कारण कहानी का अंत प्रभावोत्पादक हुआ है।

पूरी कहानी में आत्मगौरव, देशभक्ति और प्रेमनिष्ठा जैसे उच्च आदर्शों की अच्छी स्थापना हुई है।

पुरस्कार

आर्द्रा नक्षत्र; आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा-भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम-किरणों से अनुरंजित नन्हीं-नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल-सूचना से जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल आम्र-पल्लवों से सुशोभित मंगल-कलश और फूल, कुंकुम, तथा खीलों से भरे थाल लिये, मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्क्यान थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण-रंजित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महा-

राज को कृषक बनना पड़ता—उस दिन इन्द्र पूजन की धूमधाम होती ; गोठ होती । नगर-निवासी उस पहाड़ी-भूमि में आनन्द मनाते । प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता ; दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते ।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कुतूहल से यह दृश्य देख रहा था ।

बीजोंका एक थाल लिये कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी । बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती । यह खेत मधूलिका का था जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था; इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला । वह कुमारी थी । सुन्दरी थी । कौशेय-वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था । वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को । कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी, वे सब बरौनियों में गुँथे जा रहे थे । सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते; किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता नहीं की । सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे—विस्मय से, कुतूहल से । और अरुण देख रहा था कृषककुमारी मधूलिका को । आह कितना भोला सौन्दर्य ! कितनी सरल चितवन !

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया । महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्णमुद्राएँ । वह राजकीय अनुग्रह था । मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली; किन्तु साथ ही उसमें की स्वर्ण-मुद्राओं को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया । मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति

लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटी भी जरा चढ़ ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा—

"देव ! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है; इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।" महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मन्त्री ने तीखे स्वर से कहा—"अबोध ! क्या बक रही है ? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार ! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का तो यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना।"

"राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है मन्त्रिवर !......महाराज को भूमि-समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है; किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।"—मधूलिका उत्तेजित हो उठी थी।

महाराज के संकेत करनेपर मन्त्री ने कहा—"देव ! वाराणसी-युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।"—महाराज चौंक उठे—"सिंहमित्र की कन्या ! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है ?"

"हाँ देव !"—सविनय मन्त्री ने कहा।

"इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मन्त्रिवर ?"—महाराज ने पूछा।

"देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुनकर नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।"

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने-अपने शिविरों में चले गये; किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

× × ×

"रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ—वह अपने विश्राम-भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसी गुलाली खिल रही थी, वही रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुँडेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते-देखते नगरतोरण पर जा पहुँचा। रक्षकगण ऊँघ रहे थे, अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण उसी मधूक वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न-निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी-लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित, भ्रमर निस्पन्द थे। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए; परन्तु कोकिल बोल उठा। जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया—छिः, कुमारी के सोये हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट, तुम कौन? मधूलिका की आँखें खुल पड़ीं। उसने

देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी —"भद्रे ! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो ?"

"उत्सव ! हाँ, उत्सव ही तो था।"

"कल उस सम्मान..."

"क्यों आप को कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्र ! आप क्या मुझे इस अवस्था में सन्तुष्ट न रहने देंगे ?"

"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवि !"

"मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का। आह ! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित ! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।"

"सरलता की देवि ! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ—मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी ..।"

"राजकुमार ! मैं कृषक-बालिका हूँ। आप नन्दनविहारी और मैं पृथ्वीपर परिश्रम करके जीनेवाली। आज मेरी स्नेहकी भूमि परसे मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःखसे विकल हूँ; मेरा उपहास न करो।"

"मैं कोशल-नरेशसे तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।"

"नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती—चाहे उस से मुझे कितना ही दुःख हो।"

"तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?"

"यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता, तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंच कर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता। मधूलिका उठ खड़ी हुई।"

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणोंमें उस का

रत्न-किरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई ? उस के हृदय में टीस-सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

× × ×

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी-सूखी खा कर पड़ रहती। मधूक वृक्ष के नीचे छोटी-सी पर्णकुटीर थी। सूखे डंठलों से उस की दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता, वही उस की साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था।

दुबली होने पर भी उस के अंग पर तपस्या की कान्ति थी। आस-पासके कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली-की दौड़-धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था! ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुर कर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाये रखनेवाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं; परन्तु उसकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई—"दो, नहीं नहीं तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे प्रभात में—तरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?"

वह अपने हृदय से पूछने लगी—उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक सी वह पूछने लगी—"क्या कहा था ?" दुख-दग्ध हृदय उन स्वप्न-सी बातों को स्मरण रख सकता था!

और स्मरण ही होता, तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता ? हाय री विडम्बना !

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। दारिद्र्य की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद-माला के वैभवका काल्पनिक चित्र— उन सूखे डंठलों के रन्ध्रों से नभ में–बिजली के आलोक में—नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या-में जुगनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है वैसे ही मधूलिका मन-ही-मन कह रही थी—'अभी वह निकल गया।' वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी; ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोंपड़ी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ—

"कौन है यहाँ ? पथिक को आश्रय चाहिए।"

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़ेका डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी—"राजकुमार !"

"मधूलिका ?"—आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई—"इतने दिनों के बाद आज फिर !

अरुण ने कहा—"कितना समझाया मैंने—परन्तु……"

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा—"और आज आपकी यह क्या दशा है ?'

सिर झुकाकर अरुण ने कहा—"मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।"

मधूलिका उस अन्धकार में हँस पड़ी—"मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक-बालिका, यह भी एक विडम्बना है; तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।"

× × ×

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देने वाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था; किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा—"जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो, तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?"

"मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन मरण के साथी हैं भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?"

"क्यों? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम···।"

"भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ! निराश क्यों हो जाऊँ?"—अरुण के शब्दों में कम्पन था; वह जैसे कुछ कहना चाहता था; पर कह न सकता था।

"नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे? कोई ढंग बताओ तो मैं भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।"

"कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊँगा! तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता कर के भयभीत न हो"

एक क्षण में सरल मधूलिका के मन में प्रमाद का अन्धड़

बहने लगा—द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा—"आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार !"

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबा कर बोला—"तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो ?"

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह हाँ भी नहीं कह सकी, ना भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरन्त बोल उठा—"तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणों से पण लगा कर मैं तुम्हें इसी कोशल-सिंहासन पर विठा दूँ। मधूलिके ! अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी ?"—मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी—"नहीं"; किन्तु उसके मुँह से निकला—"क्या ?"

"सत्य मधूलिका, कोशल-नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिन्तित हैं। यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण-सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गये हैं।"

मधूलिका की आँखों के आगे विजलियाँ हँसने लगीं। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा—"तुम बोलती नहीं हो ?"

"जो कहोगे वही करूँगी"—मन्त्रमुग्ध-सी मधूलिका ने कहा।

× × ×

स्वर्णमंच पर कोशल-नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में आँखें मुकुलित किये हैं। एक चामरधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आन्दोलन

उस प्रकोष्ठ में धीरे-धीरे संचालित हो रहे हैं। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा—"जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।"

आँखें खोलते हुए महाराज ने कहा—"स्त्री! प्रार्थना करने आई है? आने दो।"

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—"तुम्हें कहीं देखा है।"

"तीन बरस हुए देव! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।"

"ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताए, आज उसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों? अच्छा-अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी!"

"नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।"

"मूर्ख! फिर क्या चाहिए?"

"उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि, वहीं मैं अपनी खेती करूँगी! मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा, भूमि को समतल भी तो बनाना होगा।"

महाराजने कहा—"कृषक-बालिके! वह बड़ी ऊबड़-खाबड़ भूमि है। तिसपर वह दुर्गके समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।"

"तो फिर निराश लौट जाऊँ?"

"सिंहमित्रकी कन्या! मैं क्या करूँ, तुम्हारी यह प्रार्थना !"

"देव! जैसी आज्ञा हो!"

"जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं आमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूँ।"

"जय हो देव!"—कहकर प्रणाम करती हुई मधूलिका राज-मन्दिरके बाहर आई।

दुर्गके दक्षिण, भयावने नालेके तटपर, घना जंगल है। आज वहाँ मनुष्यों के पद-संचार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाड़ियों को काटकर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा-सा खेत बन रहा था। तब इधर की किस को चिन्ता होती?

एक घने कुञ्ज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। सन्ध्या हो चली थी। उस निबिड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अन्तिम किरणें झुरमुट में घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगीं। अरुण ने कहा—"चार प्रहर और, विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण कलेवर कोशल-राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मैं, एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके!"

"भयानक! अरुण, तुम्हारा साहस देख मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम......"

"रात के तीसरे प्रहर मेरी विजय-यात्रा होगी।"

"तो तुमको इस विजय पर विश्वास है?"

"अवश्य। तुम अपनी झोंपड़ी में यह रात बिताओ, प्रभात से तो राज-मन्दिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।"

मधूलिका प्रसन्न थी; किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण कामना सशंक थी। वह कभी-कभी उद्विग्न-सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा—"अच्छा अन्धकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राण-पणसे इस अभियान के प्रारम्भिक कार्योंको अर्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए; तब रात्रि भर के लिए बिदा मधूलिके!"

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कँटीली झाड़ियों से उलझती हुई, क्रम से बढ़नेबाले अन्धकार में, वह अपनी झोंपड़ी की ओर चली।

× × ×

पथ अन्धकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़ तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी—वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती-दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध कोशल का चिर-शत्रु! ओह, उसकी विजय! कोशलनरेशने क्या कहा था—'सिंहमित्रकी कन्या'। सिंहमित्र कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है? नहीं, नहीं। 'मधूलिका! मधूलिका!!' जैसे उसके पिता उस अन्धकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोंपड़ी तक न पहुँची। वह उधेड़बुन में विक्षिप्त-सी चली जा रही थी। उसकी

आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्त्ति अन्धकार में चित्रित हो जाती। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथमें खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे-आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसके बायें हाथ में अश्व की वल्गा और दाहिने हाथमें नग्न खड्ग। अत्यन्त धीरता से वह टुकड़ी अपने पथपर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथसे हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया; पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोककर कहा - "कौन ?" कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़क कर कहा "तू कौन है स्त्री ? कोशल के सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।"

रमणी जैसे विकार-ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी—"बाँध लो, मुझे बाँध लो ! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।"

सेनापति हँस पड़े, बोले—"पगली है।"

"पगली नहीं, यदि वही होती, तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती ? सेनापति ! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।"

"क्या है ? स्पष्ट कह !"

"श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जायगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।"

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"तू क्या कह रही है ?"

"मैं सत्य कह रही हूँ; शीघ्रता करो।"

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

× × ×

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण गाथाएँ लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्षा का कारण है। जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग-द्वार पर रुके तब दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे। उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ से उतरे। उन्होंने कहा—"अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे?"

"सेनापति की जय हो! दो सौ।"

"उन्हें शीघ्र एकत्र करो; परन्तु बिना किसी शब्द के। १०० को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।"

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख-निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे; किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे। सेनापति ने कहा—"जय हो देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।"

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देख कर कहा—"सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों?—क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है? कोई बाधा? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्धमें तुम कहना चाहते हो?'

"देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग

पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देश दिया है।

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा—"मधूलिका, यह सत्य है ?"

"हाँ, देव !"

राजा ने सेनापति से कहा—"सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।" सेनापति के चले जाने के बाद राजा ने कहा—"सिंहमित्र की कन्या ! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबन्ध कर लूँ।"

× × ×

अपने साहसिक अभियान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती-दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा-मण्डप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुंकार करते हुए कहा—'वध करो !' राजा ने सबसे सहमत होकर आज्ञा दी—'प्राण-दण्ड।' मधूलिका, बुलाई गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल-नरेश ने पूछा—"मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।" वह चुप रही।

२

राजा ने कहा—"मेरे निज की जितनी खेती है. मैं सब तुझे देता हूँ।" मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा, "मुझे कुछ न चाहिए।" अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा—"नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।"

"तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले।" कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

श्री विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'

[जीवन-काल सन् १८९१–१९४६ ई०]

माता का हृदय

कौशिक जी का जन्म अम्बाला छावनी में हुआ, जहाँ पिता फौज में स्टोरकीपर थे। एक निःसंतान संबंधी ने, जो कानपुर में वकील थे, इन्हें दत्तक पुत्र बना लिया। स्कूल में मैट्रिक तक शिक्षा पाई। हिंदी, संस्कृत और बंगला के अतिरिक्त उर्दू-फारसी के भी ज्ञाता थे। पहले 'राग़िब' उपनाम से उर्दू में भी कविताएँ लिखीं। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रोत्साहन पाकर हिंदी में कहानियाँ लिखने लगे। कहानियों के अतिरिक्त 'माँ' और 'भिखारिणी'—ये दो उपन्यास तथा 'विजयानंद दुबे' और 'दिव्यचक्षु' के नाम से हास्यरस के कुछ सुन्दर गद्य-लेख भी लिखे हैं। इनकी कहानियाँ सामाजिक हैं और अधिकतर मध्यवर्गीय परिवार की विविध परिस्थितियों को लेकर चलती हैं। इनकी कहानियों के कथनोपकथन बहुत स्वाभाविक और कहानी-कला के एकदम अनुरूप हुए हैं। इनकी अधिकांश कहानियों में यद्यपि सुधारात्मक आशय बहुत स्पष्ट रहता है पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनके चरित्र-चित्रण काफी मार्मिक और सजीव हुए हैं।

'मनुष्य जिससे प्रेम करता है, उसे यदि अपना बना कर नहीं रख सकता, तो उसे घोर कष्ट होता है'—मानव मन की इस दुर्बलता का मार्मिक चित्रण करते हुए लेखक ने इस कहानी में सुन्दर

ढङ्ग से यह दिखाया है कि माता आखिर माता ही होती है। चाहे क्षणिक मानसिक दुर्बलता के वशीभूत होकर, आवेश में आकर, वह पुत्र को बुरा-भला कह दे, पर उसकी मंगल-कामना से वह कभी विरत नहीं हो सकती। जब ब्रजमोहन बीमार पड़ता है तब उसकी माँ बिना बुलाए उसके नये घर जाती है और ज्वर से बेहोश पुत्र की सेवा-शुश्रूषा जी-जान से करती है। माँ का दुर्लभ प्यार सुलभ होता है, ब्रजमोहन अच्छा होने लगता है और बिछुड़े हुए माँ-बेटे फिर मिलते हैं। इस प्रकार अंत में प्रतिस्पर्द्धामूलक ईर्ष्या पर पुत्र-प्रेम विजयी होता है। वात्सल्यभाव नारी के व्यक्तित्व का अविच्छेद्य अंग है। चाहे बाहरी परिस्थितियाँ और मन की दुर्बलताएँ उसे थोड़ी देर के लिए स्तब्ध कर दें पर अन्त में विजय वात्सल्य-भाव की ही होती है। कौशिक जी की 'ताई' नामक कहानी भी इसी मूल भाव पर लिखी गई है।

स्त्रियाँ छोटी-छोटी बातों को महत्व देकर किस प्रकार बात का बतंगड़ बना देती हैं, आवेश में आकर कभी-कभी कितना अनाप-शनाप बक जाती हैं और कभी-कभी उसका परिणाम कैसा भयानक हो जाता है; आवेश समाप्त होने पर किस प्रकार वे स्वयं अपने किये पर पश्चात्ताप करती हैं; बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ आपस में किस तरह की बातें करती हैं, आदि पारिवारिक तथ्यों का इस कहानी में सजीव चित्र खींचा गया है। कथोपकथन इस कहानी में सुन्दर ढङ्ग से नियोजित किया गया है—उसमें कहीं भी कृत्रिमता या शिथिलता नहीं दिखाई देती। संवादों के द्वारा चरित्रों पर भी प्रकाश पड़ता है और घटनाओं के आगे बढने में भी उनसे बराबर सहायता मिलती है।

माता का हृदय

(१)

"क्या कहूँ बहू, जब से ब्रजमोहन का ब्याह हुआ, तब से उसकी तो जैसे काया ही पलट गई। ब्याह के पहले मेरे पास घण्टों बैठता, अपना दुःख-सुख कहता, मेरी सुनता, और हर बात में मेरी सलाह लेता था; पर जब से ब्याह हुआ, तब से वे सारी बातें सपना-सी हो गईं। मैंने किस चाव से ब्याह किया था। मैं सोचती थी कि दोनों की जोड़ी देखकर मैं आँखें ठण्डी करूँगी। मैं यह नहीं जानती थी कि अपने पैर में आप ही कुल्हाड़ी मार रही हूँ।

"बहू आज कल कुछ हवा ही ऐसी चल गई है कि मरद जोरू के गुलाम हो जाते हैं, माँ-बाप को दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक देते हैं। जब देखो लाड़ली का आँचल पकड़े बैठे हैं। यह कलजुग है। इसमें जो न हो, सो थोड़ा समझो! आज कल की लड़कियाँ ऐसी छबीली होती हैं कि अपने मरद पर जादू डाल देती हैं। बस वह उन्हीं के कहने पर चलता है।"

शाम का समय है। एक कमरे में दो प्रौढ़ा स्त्रियाँ बैठी उक्त बातें कर रही हैं। ठीक उसी समय एक युवती कुछ घूँघट निकाले उस स्थान पर आई। उसे देखकर दोनों प्रौढ़ाओं में से एक ने मुँह पर उँगली रखकर दूसरी की ओर इशारा किया!

दूसरी स्त्री कुछ कहना ही चाहती थी, पर उसके इशारा करने से चुप हो गई ! युवती ने इशारा करनेवाली स्त्री से पूछा—"माँ जी, आज खाने को क्या बनेगा।" माँ जी मुँह फुलाकर बोलीं—"मैं क्या जानूँ ? जो तेरा जी चाहे बना। अपने आदमी से पूछ ले !"

"अपने आदमी से पूछ ले" का तात्पर्य था "अपने पति से पूछ ले।" युवती ने कुछ देर चुप रहकर कहा—"तुम्हारा जी जो खाने को हो, वह मैं बनाऊँ।"

प्रौढ़ा कुछ रूखी मुस्कान के साथ बोली—"मेरा जी अब काहे में रहा ? मैं तो बहुत खा-पी चुकी। मुझे तो अब पेट भरना है। अब तुम्हारा राज है। जो जी चाहे, सो बनाओ-खाओ।"

यह कहकर प्रौढ़ा ने दूसरी प्रौढ़ा की ओर एक भावपूर्ण दृष्टि डाली। दूसरी प्रौढ़ा ने एक लम्बी साँस लेकर गर्दन झुका ली। युवती कुछ देर तक मौन खड़ी रही फिर धीरे-धीरे वहाँ से चली गई ! युवती के चले जाने पर पहली स्त्री अर्थात् व्रजमोहन की माता, बोली—"देखा, मुझसे पूछती है क्या खाओगी ?" दूसरी स्त्री ने कहा—"तो इसमें कोई वैसी बात नहीं। घर के बड़े-बूढ़ों से तो पूछा ही जाता है !" व्रजमोहन की माता माथे पर हाथ रखकर बोली—"हे भगवान् ! बहू, तू भी सठिया गई ? अरे, इसमें भी चाल है ! मैं कुछ कह देती, बस झट खसम से जाकर कहती कि वह तो यह खायँगी, वह खायँगी—उनकी जीभ लपर-लपर हुआ करती है—इत्यादि। और, न जाने क्या-क्या जड़ती। इसी से तो मैंने कह दिया कि तुम्हारा जो जी चाहे, बनाओ-खाओ ! और, बहू सच्ची बात तो यह है कि हमने-तुमने बहुत खा-पी लिया है। हम-तुमने जो खाया-पिया है, वह आज कल के लोगों को, देखने को नहीं मिल सकता।"

दूसरी ने कहा—"राम-राम, वे बातें अब कहाँ ?"

(२)

व्रजमोहन अपने कमरे में कपड़े उतार रहे थे। उसी समय उनकी अर्द्धांगिनी ने कमरे में प्रवेश किया। अर्द्धांगिनी को देख व्रजमोहन कुछ मुस्करा कर बोले—"खाना तैयार है ?"

मनोरमा ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"तैयार है।"

व्रजमोहन ने पूछा—"आज क्या बना है ?"

मनोरमा मुख भारी करके बोली—"जो बनना था, वही बना है।"

व्रजमोहन कुछ देर तक चुप रहे, फिर कुछ गंभीर हो कर बोले—"आज तुम कुछ उदास मालूम होती हो, क्या बात है ?"

मनोरमा चुप रही।

व्रजमोहन ने पूछा—"क्यों, क्या हुआ ?"

मनोरमा क्रंदन स्वर में बोली—"हुआ क्या, माँजी का व्यवहार दिन-पर-दिन रूखा होता जा रहा है। आज पड़ोस के वसंत-कुमार की माता आईं थीं, उनसे अकेले में बैठे न-जाने क्या-क्या खुसुर-फुसुर कर रहीं थीं। मैंने जाकर पूछा—आज खाने को क्या बनेगा ? बस, इतना पूछने पर ही न-जाने क्या-क्या बकने लगीं। बोलीं—"खसम से पूछ ले ! मेरा राज तो गया, अब तुम्हारा राज है ! जो चाहे, बनाओ-खाओ इत्यादि। और, न-जाने क्या-क्या कहा। मुझे वैसे तो कुछ बुरा न लगता, वह रोज ही दो-चार बातें कहा करती हैं; पर आज एक बाहर की स्त्री के सामने उन्होंने ये बातें कहीं। वह अपने जी में न-जाने क्या-क्या कहेंगी। माताजी तो अब कुछ शत्रुता-सी करने पर उतारू रहती हैं।"

मनोरमा की बातें सुनकर व्रजमोहन के मुख की गंभीरता बढ़ गई। वह बड़ी देर तक चुप-चाप बैठे सोचते रहे। फिर एक लम्बी

साँस लेकर बोले—"हाँ, मैं भी उनके रूखे व्यवहार का अनुभव कर रहा हूँ। पहले वह मुझे इतना प्यार करती थीं, जितना कि एक माता को करना चाहिए, परन्तु अब उनके उस व्यवहार में बहुत अंतर हो गया है।'

मनोरमा—"ये सारी बातें मेरे कारण हैं। न-जाने वह मुझसे क्यों जला करती हैं? मैंने उनका क्या बिगाड़ा है? मैं तो सदा उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती हूँ, प्रत्येक काम में उनकी आज्ञा ले लेती हूँ, फिर भी वह असंतुष्ट रहती हैं।"

व्रजमोहन—"सास और बहू में कभी प्रेम का व्यवहार नहीं रह सकता। सास और बहू में वैमनस्य रहना स्वाभाविक है।"

मनोरमा—"पर जब मैं अपनी ओर से कोई ऐसा काम नहीं करती, जिससे उन्हें दुख हो, तब फिर इसमें मेरा क्या अपराध है?"

व्रजमोहन—"जब मनुष्य के हृदय में वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है, तब उसे जरा-जरा-सी बात में दोष और अपराध दिखाई पड़ता है! अब केवल प्रश्न यह है कि आखिर उनके हृदय में तुम्हारे प्रति वैमनस्य क्यों उत्पन्न हुआ?"

मनोरमा—"यही तो मैं भी सोचती हूँ कि इसका कारण क्या है?"

व्रजमोहन—(कुछ रूखे स्वर में) "इसका कारण उनकी मूर्खता के सिवा और क्या कहा जा सकता है? अच्छा, अब तुम भोजन यहीं ले आओ।"

व्रजमोहन ने अपने ही कमरे में भोजन किया। उस दिन वह अपनी माता के पास तक नहीं गए!

(३)

व्रजमोहन विवाह के पहले अपना खाली समय, अर्थात

जबतक वह घर में रहते थे, माता के पास बैठने-उठने में व्यतीत करते थे। दोनों वक्त माता के साथ भोजन करते थे, रात को माता के पलंग के पास पलंग बिछाकर सोते थे। रात को जबतक जागते रहते थे, माता से अनेक प्रकार की बात-चीत करते रहते थे। अपना दुख-सुख कहते और उनका सुनते थे। प्रत्येक कार्य में उनका परामर्श लेते थे। यदि कभी किसी कारण माता का चित्त उदास होता था, अथवा उन्हें कोई शारीरिक कष्ट होता था, तो व्रजमोहन उनको प्रसन्न करने की, उनका शारीरिक कष्ट दूर करने की, पूरी चेष्टा करते थे। यदि कभी किसी कारण माता की इच्छा भोजन करने की न होती थी, तो व्रजमोहन कहते थे—देखो माँ, जो तुम न खाओगी, तो मैं भी न खाऊँगा। यह सुनकर माता व्याकुलहो जाती थी, और जिस प्रकार बनता, कुछ खाने की चेष्टा करती थी। पहले व्रजमोहन जो कुछ धनोपार्जन करते थे, वह माता के हाथ पर धर देते थे, और जब कभी खर्च की आवश्यकता होती थी, तो उन्हीं से माँग लिया करते थे। परन्तु विवाह होने के बाद उनके खाली समय का अधिकांश मनोरमा के साथ व्यतीत होने लगा। जब व्रजमोहन भोजन करने बैठते, मनोरमा प्रेम के मारे स्वयं उनके पास जा बैठती, और उन्हें भोजन कराती। ऐसी दशा में माता वहाँ कैसे उपस्थित रह सकती थी? जो कुछ धनोपार्जन करते थे, उसमें आधा तो वह माता को देने लगे और आधा मनोरमा को! पहले व्रजमोहन की मंत्रिणी माता थी; परन्तु अब मनोरमा हो गई। हाँ, कभी-कभी किसी बात में माता की सलाह भी ले ली जाती थी। यदि अब माता को कोई शारीरिक कष्ट होता, तो साधारण रूप से सेवा-शुश्रूषा होती थी। उसमें पहले-की सी प्रेम की गरमी नहीं पाई जाती थी। अब यदि माता किसी

कारण से भोजन नहीं करती, तो व्रजमोहन दो-एक बार पूछ कर स्वयं भोजन कर लेते हैं। वह प्रेम-रसपूर्ण वाक्य कि "देखो माँ, जो तुम न खाओगी, तो मैं भी न खाऊँगा", अब नहीं कहते।

उक्त घटना के दूसरे दिन व्रजमोहन की माता बसंतकुमार के घर गई। बसंतकुमार की माता ने आदरपूर्वक बिठला कर पूछा—"कहो बहू, आज उदास क्यों हो ?'

मनुष्य मात्र का यह स्वभाव है कि वह अपना दुख-सुख मित्रों से कहकर अपने हृदय का भार हलका करता है। अशिक्षितों में—खास कर स्त्रियों में, यह स्वभाव विशेष बलवान होता है। वे अपना दुख-सुख जबतक किसी से कह कर उसकी सहानुभूति प्राप्त नहीं कर लेतीं, तबतक उनके हृदय पर बड़ा भारी बोझ-सा लदा रहता है। व्रजमोहन की माँ बसतकुमार की माता के पास इसलिए आई थीं कि अपने हृदय की वेदना उनसे कहें। वह एक लम्बी साँस छोड़कर बोलीं—"क्या कहूँ बहू, मेरे भाग फूट गए। अब मेरा व्रजमोहन मेरा नहीं रहा। हाय, अब मुझे यह ध्यान आता है कि व्रजमोहन को मैंने इतने दुख उठा कर पाला, उसके कारण दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा, उसी का मुँह देख-देखकर जीती रही। जब उसके बाप परलोक सिधारे थे, तब मैंने उसी को देखकर मन को धीरज दिया था। मैंने उनके मरने का दुख उतना नहीं माना, जितना कि मेरी जैसी विधवाओं को होना चाहिए। जब मैं यह सोचती हूँ कि जो व्रजमोहन मेरे बिना एक घड़ी भी नहीं रह सकता था,—व्याकुल हो जाता था, जो व्रजमोहन बिना मुझे खिलाए खाता नहीं था, जो व्रजमोहन मुझे दुखी देखकर व्याकुल हो जाता था, जो व्रजमोहन रात-दिन मेरे मुँह की ओर ताका करता था—मेरी आज्ञा बिना छोटे-से-छोटा काम भी नहीं करता था, वह अब

पराया हो गया। जब मुझे यह ध्यान आता है, तब कलेजे में एक हूक उठती है। मुझ निगोड़ी ने अपना आपा जला-जलाकर उसे पाला-पोसा। आज मुझे एक पराए घर की छोकरी ने दूध की मक्खी की तरह अलग कर दिया, और मेरे व्रजमोहन को अपना बना लिया, मुझे गैर कर दिया। हाय !"

वसंतकुमार की माता बोली—"बहू, यह तो सारे संसार में हो रहा है। माँ-बाप कितने दुख-सुख उठाकर पालते-पोसते हैं, पर वे तो पराए हो जाते हैं, और दो दिन की आई हुई पराए घर की छोकरियाँ लाड़ली हो जाती हैं।"

व्रजमोहन की माता ने फिर कहना शुरू किया—"वैसे तो बहू, मेरी बहू में कोई दोष नहीं, बेचारी हर प्रकार से मेरी सेवा करती रहती है; पर जब मुझे यह ध्यान आता है कि इसी ने मेरे व्रजमोहन को मुझसे छुड़ा कर अपना बना लिया, जो यह न आती तो व्रजमोहन का और मेरा प्यार वैसा ही बना रहता—तब मेरे हृदय में आग सी लग जाती है, उसे देखकर मेरी आँखें में खून उतर आता है। क्या कहूँ, मैं अपने मन को बहुत समझाती हूँ कि संसार में सबके यहाँ ऐसा ही होता है, हमारे भी सास-ससुर थे, हमने भी उनके साथ यही किया, जो अब हमारे बहू-बेटे हमारे साथ कर रहे हैं; पर फिर भी यह जी नहीं मानता।"

वसंतकुमार की माता बोली—"बहू, चाहे जो हो, अब वह बात तो होनेकी नहीं। अब तो वह उसका हो चुका। चाहे तुम कुछ भी करो, वह तुम्हारा नहीं हो सकता। इससे अब मन को धीरज देना ही अच्छा है।"

व्रजमोहन की माता रोने लगी और रोते-रोते बोली—"बहू, मैं और कुछ नहीं चाहती ! जिसमें वह सुखी रहे, वही करे; उसे सुखी देख कर मेरी छाती ठण्डी रहेगी। पर मैं केवल इतना

चाहती हूँ कि वह जितना प्यार मुझसे पहले करता था, उसका आधा ही करे। क्या कहूँ बहू, अब तो वह कई-कई दिनों तक मेरे पास तक नहीं आता।"

वसंतकुमार की माँ ने कहा—"अच्छा, आज मैं वसंत से कहूँगी, वह ब्रजमोहन को समझाएगा। देखो, उसके समझाने से वह समझ जाय, तो अच्छा ही है।"

(४)

प्रेम और ममत्व का ऐसा जोड़ा है कि दोनों कभी जुदे नहीं किए जा सकते। जहाँ प्रेम है, वहाँ ममत्व है, जहाँ ममत्व है, वहाँ प्रेम है। मनुष्य जिससे प्रेम करता है, उसको अपना बना कर रखना चाहता है। जिसे मनुष्य अपना समझता है, उससे प्रेम करता है। मनुष्य जिससे प्रेम करता है, उसे यदि अपना बना कर नहीं रख सकता, तो उसे घोर कष्ट होता है और ऐसा ही प्रेम असफल-प्रेम कहलाता है!

यही हाल ब्रजमोहन की माता का भी था। माता के प्रेम का क्या कहना। ऐसी दशा में ब्रजमोहन की माता के लिए यह बात असह्य थी कि ब्रजमोहन उसकी ओर से उदासीन हो जाय, और दूसरे के प्रेम-पाश में बँध जाय। इसका कारण वह अपनी बहू को ही समझती थी और इसी कारण पुत्र-बधू के प्रति उसके हृदय में घोर द्वेष उत्पन्न हो गया था! इसी द्वेष के कारण वह उससे इतना रूखा और कटु व्यवहार करती थी।

दूसरे दिन वसंतकुमार ने ब्रजमोहन से मिलकर कहा—"भाई ब्रजमोहन, मुझे तुमसे एक बात करनी है।"

ब्रजमोहन ने कहा—"कहिये, क्या कहते हैं?'

वसंतकुमार—"मैंने सुना है कि तुम अपनी माता के साथ बड़ा दुर्व्यवहार करने लगे हो।"

ब्रजमोहन चौंक कर बोले "दुर्व्यवहार ?"

वसंतकुमार—"हाँ, दुर्व्यवहार ?"

ब्रजमोहन—"यह तुमसे किसने कहा ?"

वसंतकुमार—"किसी ने कहा हो, बात बिल्कुल ठीक है।"

ब्रजमोहन—"परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने क्या दुर्व्यवहार किया। बल्कि, सच पूछो तो वही दुर्व्यवहार करने लगी हैं।"

बसंत कुमार—"तुम जैसा प्रेम का व्यवहार अपनी माता के साथ विवाह के पहले करते थे, वैसा अब नहीं करते।"

यह कह कर बसंतकुमार ने उनका माता के साथ, विवाह के पहले और पीछे का व्यवहार, जो उन्होंने अपनी माता से सुन रखा था, ब्रजमोहन को बतलाया !

ब्रजमोहन सब सुनकर मुस्कराए !

वसंतकुमार बोले—"क्यों यह बात ठीक है ?"

ब्रजमोहन—"ठीक तो है, पर मैं इसे दुर्व्यवहार नहीं समझता। यह ठीक है कि पहले मैं उनके प्रति अपना प्रेम बातों और कार्यों द्वारा प्रकट करता रहता था; परन्तु अब ऐसा नहीं करता। उसका कारण तुम पूछो तो मैं यह बतलाऊँगा कि पहले मेरे स्वभाव में लड़कपन था, अब वह लड़कपन नहीं रहा। मुझे अब वैसा व्यवहार करते लज्जा-सी मालूम होती है। इस लज्जा का कारण मेरी सपत्नीक अवस्था है। जब से मेरी पत्नी आई, तब से माता के सामने जाने में भी मुझे लज्जा-सी मालूम होती है। तुम्हारा विवाह नहीं हुआ, इसलिए तुम उसका अनुभव नहीं कर सकते। जब विवाह हो जायगा, तब समझोगे कि मेरी बात में कितनी सचाई है ! रही हृदय की बात, सो मेरे हृदय में उनके प्रति आदर और प्रेम तनिक भी कम नहीं हुआ।"

बसंत कुमार बोले—"भाई, मैं 'सपत्नीक'-जीवन के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि उससे अनभिज्ञ हूँ, पर इतना अवश्य कहूँगा कि मनुष्य-स्वभाव केवल भावों के हृदयस्थ रहने से संतुष्ट नहीं रहता। जिससे तुम प्रेम करते हो, उसके प्रति यदि अपने प्रेम को केवल हृदय ही में रखे रहो, उसपर अपने व्यवहार से उस प्रेम को प्रकट न करो, तो वह कभी तुम्हारे प्रेम को नहीं जान सकता। वह तो तुम्हारे प्रेम की मात्रा को तभी जानेगा, जब तुम उसे व्यवहार द्वारा उस पर प्रकट करोगे। मान लो, यदि किसी प्रकार प्रेम-पात्र को तुम्हारे हृदयस्थ प्रेम का पता लग भी जाय तब भी वह संतुष्ट नहीं हो सकता, क्यों कि हृदय में परिमित प्रेम एक कटोरे में भरे हुए जल के समान है। कटोरे में भरा हुआ जल दिखाई तो पड़ता है कि कटोरे में भरा है, परन्तु उसे केवल देखने ही से किसी की तृष्णा नहीं बुझती। तृष्णा तो तभी बुझेगी, जब वह पीने के लिए दिया जायगा।"

व्रजमोहन—"यह बात ठीक है, पर इस सम्बन्ध में नहीं लागू होती। मैं समझता हूँ कि वह माता जी की अशिक्षा और उनका स्त्री-स्वभाव है। वह एक साधारण-सी बात को इतना महत्व दे रही हैं।"

बसंत कुमार—"खैर, तुम्हारी इच्छा, जो ठीक समझो, करो। मुझे जो कुछ कहना था वह कह चुका।"

(५)

व्रजमोहन ने वसंत कुमार की बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उन्होंने उन बातों को बिल्कुल निरर्थक समझा। वह समझते थे कि उनकी माता ही, अशिक्षित होने और बहू मनोरमा से द्वेष-भाव रखने के कारण, यह सब झगड़ा मचाए हुए हैं। उन्हें माता के घरेलू बातों को दूसरों से कहकर उनसे सहायता चाहने

के कार्य पर बहुत क्रोध आया! उन्होंने ये सब बातें मनोरमा से कहीं। मनोरमा ने भी सास के इस कार्य को बहुत बुरा समझा, और पति को उनके विरुद्ध खूब भड़काया। परिणाम यह हुआ कि गाँठ सुलझने की अपेक्षा और अधिक उलझ गई। मनुष्य स्वार्थ का पुतला है। वह दूसरों के हृदय की, दूसरों के भावों की, उस समय तक कुछ भी पर्वा नहीं करता, जब तक अपने हृदय पर चोट नहीं पड़ती। उन्होंने अपनी माता के प्रेम की गहराई को न जाना, उनके सरस-हृदय को न समझा। उन्होंने उन्हें केवल एक अशिक्षित और विवेक-हीन स्त्री समझा। उसी दिन से वह और भी रूखा व्यवहार करने लगे।

इधर ब्रजमोहन की माता भी अशिक्षित थीं। उन्होंने ने भी तमाचे का उत्तर घूँसे से देना शुरू किया। इसमें सन्देह नहीं कि वह ब्रजमोहन के रूखे व्यवहार से दुखी होकर एकांत में बैठी घंटों रोया करती थीं, परन्तु उन्हें अपने हृदय पर इतना अधिकार नहीं था कि अपने व्यवहार को ठीक रखतीं। जब बात निकलती तब एक की चार-चार सुनाती थीं। प्रायः झगड़े का श्रीगणेश उन्हीं की ओर से होता था!

शाम का समय था। मनोरमा ने स्नान करके भूल से सास की धोती पहन ली! सास ने भी कुछ देर बाद स्नान किया। स्नान करने के बाद जब धोती की आवश्यकता पड़ी, तब मालूम हुआ, उनकी धोती बहू रानी ने पहन ली है। बस, फिर क्या था। उनका क्रोध उबल पड़ा। वह चीत्कार करके बोलीं—"देखो तो राँड़ की बातें। मेरे कपड़े छीनने की घात में है।"

सास के प्रति पति की उदासीनता से मनोरमा का साहस भी बढ़ गया था। अतएव उसने भी कहा—"जरा समझ-बूझकर बात कहा करो! क्यों बुढ़ापे में अपनी दुर्दशा कराने पर लगी हो!

हमारा ही दिया खाती-पहनती हो, और हमीं तुम्हारे कपड़े छीनने की घात में हैं! कहते लाज भी नहीं आती? देखो न, बाप के घर से कपड़ों के थान आते हैं। हमें जो राँड़ कहे, वह इस जलम में तो राँड़ है ही, राम करे सात जलमों तक राँड़ रहे।"

मनोरमा की इस बात पर सास के ऊपर क्रोध का भूत सवार हो गया। उन्होने जो मुँह में आया बकना शुरू किया। मनोरमा जब उनकी बातों का उत्तर न दे सकी, तब उसने बैठ कर रोना शुरू कर दिया।

थोड़ी देर बाद व्रजमोहन आ गए। मनोरमा ने रो-रोकर उनसे सब हाल कहा। व्रजमोहन उसी समय क्रोध में भरे हुए माता के पास पहुँचे और बोले—"क्यों माँ, तुमने उसे राँड़ क्यों कहा?"

माता बोलीं—"मैंने कहा, और सौ बार कहूँगी, जो तेरा जी चाहे कर, और जो उस राँड़ का जी चाहे, वह करके देख ले!"

व्रजमोहन—"तुम इतनी मूर्ख हो? तुम्हें यह पता नहीं कि उसे राँड़ कहकर तुम मुझे ही कोस रही हो।"

माता—"कोसती तो हूँ। फिर? मैं तो कहती हूँ कि जब तेरी अर्थी मचमचाती निकलेगी, जिस दिन उस कलमुँही की चूड़ियाँ फूटेंगी, उस दिन मेरे कलेजे में ठंडक पड़ेगी।"

माता की यह बात सुनकर व्रजमोहन सन्नाटे में आ गए। उन्होंने सोचा यही मेरी माता है? इसी के प्रेम के राग अलापे जाते हैं। यह माता नहीं राक्षसी है, नागिन है! उनके हृदय में माता के प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होंने कुछ देर सोचकर कहा—"बस, हद हो गई। अब हमारा तुम्हारा निर्वाह एक घर में नहीं हो सकता।"

माता ने तुरंत उत्तर दिया—"नहीं हो सकता, तो अपना

काला मुँह लेकर निकल जा, और उसको भी ले जा। यह घर मेरे आदमी का है; मैं तो उसे कभी नहीं छोड़ सकती। मुझे जो इस घर से निकलने को कहेगा, उसकी और अपनी जान एक कर दूँगी!

व्रजमोहन ने कर्कश स्वर में कहा—"तुम्हारे आदमी का है, तो तुम उसे लेकर बैठो। जो मैं अपने बाप का बेटा हूँ, तो इस घर में आकर कभी थूकूँ भी नहीं।"

माता भी बोली—"और जो मैं भी अपने बाप की बेटी हूँ, तो तेरे द्वार पर कूड़ा फेंकने भी न जाऊँगी।"

व्रजमोहन को अपनी माता से अलग हुए तीन महीने हो चुके। इतने दिनों तक दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। व्रजमोहन तो माता को एक प्रकार से बिल्कुल भूल गए। परन्तु व्रजमोहन की माता अब भी प्रतिदिन पास-पड़ोस वालों से व्रजमोहन के सम्बन्ध में पूछ लेती है, और यह जानकर कि वह आनन्द से है, सुख की साँस भरती है। इसी वर्ष में व्रजमोहन का जन्मदिन पड़ा। उस दिन माता ने बड़ा आनन्द मनाया। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी। पास पड़ोस की दो-चार स्त्रियों को एकत्र करके कुछ गाया-बजाया भी। कुछ लोग उनकी इस बात पर हँसते थे कि यह बुढ़िया पागल हो गई है। आप ही तो पहले लड़-भिड़कर लड़के से अलग हुई और अब उसके जन्म-दिन पर ढोलक ठनकाती है।

कभी-कभी वृद्धा एकांत में बैठकर सोचा करती, "मैंने नाहक झगड़ा बढ़ाया। मैं चुप रहती तो अच्छा था। मेरा व्रजमोहन मेरी आँखों की ओट न होता! हाय, मैंने उसे कैसी-कैसी कड़ी बातें कहीं, मैंने उसे कोसा! हे भगवान! उस समय मेरी जीभ क्यों न जल गई! राम करे, उसको कोसा हुआ मुझे लग जाय।" ऐसी-ऐसी बातें सोचकर वृद्धा घण्टों बैठी रोया करती,

और अंत में यह कहकर मन को धैर्य देती कि—"वह चाहे जहाँ रहे, ईश्वर उसे दूध-पूत से सुखी रखे !"

एक दिन पड़ोसी ने आकर कहा—"तीन दिन से ब्रजमोहन को बड़ा ज्वर है; बेहोश पड़ा है।"

इतना सुनते ही मानो बुढ़िया के पैरों-तले धरती खिसक गई। उसने घबरा कर कहा—"देखो उस कलमुँही ने मुझे खबर तक न दी। उसी ने तो मेरे ब्रजमोहन का मन बिगाड़ दिया; नहीं तो उसका ऐसा अच्छा सुभाव है कि वैसे सुभाव का आदमी दिया लेकर ढूढ़ो, तब भी न मिलेगा।"

ब्रजमोहन की माता उसी समय ब्रजमोहन के घर पहुँची। ब्रजमोहन ने माता को देखा; पर कुछ बोले नहीं। ब्रजमोहन का ज्वर बढ़ता गया। वह एक महीने के लगभग बीमार रहे। बुढ़िया ने सेवा-शुश्रूषा में जान लड़ा दी। यथाशक्ति मनोरमा को अलग रखने की चेष्टा करती रही। मा रात-रात-भर बैठी पंखा झला करती थी। समय पर औषध देती, समय पर पथ्य देती। ज्वर कम होने पर एक दिन रात को दो बजे ब्रजमोहन को अच्छी तरह होश आया। उन्होंने इधर-उधर देखा। उनके सिरहाने उनकी माता बैठी पंखा झल रही थी। पास ही एक पलंग पर मनोरमा पड़ी सो रही थी। नींद के मारे बुढ़िया की आँखें झुकी पड़ती थीं, परन्तु वह बराबर अपने काम में लगी हुई थी। ब्रजमोहन को इधर-उधर ताकते देख माता का मुख खिल उठा। उससे पूछा—"क्यों बेटा, कैसा जी है—क्यों बेटा, कैसा जी है ?" शब्द बड़े साधारण थे; पर माता के मुख से निकले हुए उन शब्दों में न-जाने कितनी प्रेम की जीवनी थी। ब्रजमोहन की आखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने माँ कहकर माता के गले में अपनी बाहें डाल दीं।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी

[जीवनकाल सन् १८८३–१९२२ ई०]

उसने कहा था

गुलेरी जी का जन्म जयपुर में हुआ। पिता जयपुर संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल थे। सन् १८९९ में प्रयाग विश्वविद्यालय की एन्ट्रेंस परीक्षा में ये सर्वप्रथम रहे। इसी वर्ष कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एन्ट्रेंस परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। छात्रावस्था में ही इनकी प्रतिभा का परिचय मिलने लगा। १८ वर्ष की अवस्था में कैप्टेन गैरेट के साथ 'Jaipur observatory and its Builder' नामक ग्रंथ लिखा। १९०४ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा पास की और उसमें सर्वप्रथम रहे। इसी वर्ष मेयो कालेज अजमेर में संस्कृत के प्रधान अध्यापक हो गए। सन् १९०४ से १९१७ के बीच बहुत से विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे जिसके फलस्वरूप पुरातत्त्व, भाषातत्त्व, प्राचीन इतिहास, संस्कृत, वैदिक संस्कृत, पाली और प्राकृत के उच्च-कोटि के विद्वानों में गिने जाने लगे। सन् १९२० में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के ओरिएंटल कालेज के प्रिंसिपल बनाए गए। बंगला, मराठी, लैटिन, फ्रेंच और जर्मन के भी ज्ञाता थे। इनकी हिंदी-गद्यशैली अपनी सरलता, विनोदरंजित सजीवता और सांकेतिकता के कारण अनूठी मानी जती है। आपने केवल तीन कहानियाँ लिखी हैं—'सुखमय जीवन' 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा

था'। इन्हीं के कारण हिंदी के कहानी-साहित्य में इनका उच्च स्थान निर्धारित हो गया।

'उसने कहा था' एक ऐसे वीर और दृढ़चेता पुरुष की कहानी है जिसने बाल्यकाल के सहज प्रेम की स्मृति में की गई प्रतिज्ञा का पालन करने में निःस्वार्थ भाव से प्राणोत्सर्ग कर दिया। सिपाही लहना सिंह अपनी सजीवता और कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण हिंदी-पाठकों की सहानुभूति प्राप्त कर एक स्मरणीय पात्र बन गया है।

इस कहानी का शीर्षक जितना कुतूहलवर्धक है उतना ही आकर्षक इसका आरंभ भी हुआ है। भारी चहल-पहल और भीड़-भाड़ के बीच जब कहानी के प्रधान पात्र बाजार की एक दूकान पर आ मिलते हैं तो पाठक की दृष्टि उन पर तुरंत जा टिकती है। कहानी की घटनाओं के क्रम में उलटफेर करके लेखक ने बड़े कौशल से पाठक की उत्सुकता जाग्रत बनाए रखने की चेष्टा की है। सबसे पहले अमृतसर के बाजार का सजीव दृश्य सामने आता है जिसमें बालक लहना और एक बालिका मिलते हैं। फिर उसके बाद तुरंत लड़ाई का मैदान आ जाता है। कहानी के अंतिम खंड में, मरते हुए लहना सिंह की स्मृति के रूप में बीच के पच्चीस वर्षों की घटनाओं का पता चलता है और कथा के बीच की कड़ी जुड़ जाती है। इस प्रकार पूरे रहस्य का उद्‌घाटन अंत में होता है। गुलेरी जी की वर्णन शैली का चमत्कार अमृतसर के बाजार और युद्धभूमि का यथार्थ चित्रण करने में भली भाँति देखा जा सकता है। बीच-बीच में आए विनोदपूर्ण प्रसंग भी कहानी की रोचकता बढ़ा देते हैं। प्रायः सारी कथा घटनाओं और संवादों द्वारा व्यंजित हुई है जिससे कहानी में नाटकीय रोचकता आ गई है।

उसने कहा था

[१]

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गयी है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तंग चक्करदार गलियों में, हर एक लडढीवाले[1] के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा'[2], कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक

---

१ गाड़ीवाले। २ बादशाह।

से नहीं हटती, तो इनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिए; हट जा, करमा वालिए; हट जा, हट जा, पुत्ताँ प्यारिए; बच जा, लंबी वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ?—बच जा।

ऐसे बम्बू-कार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ है ?'

'मगरे में,—और तेरे ?'

'माझे में; यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुवजार में है।'

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—

'तेरी कुड़माई[१] हो गयी ?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गयी और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहाँ या दूध वाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन

---

१ सगाई।

वार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गयी ?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तब लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध, बोली—'हाँ, हो गयी।'

'कब ?'

'कल;—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू[1] !'

लड़की भाग गयी। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले[2] की दिन-भर की कमाई खोयी, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पायी। तब कहीं घर पहुँचा।

[२]

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है! दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गयीं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा, और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीच में धँसे हुए हैं। ग़नीम[3] कहीं दिखता नहीं,—घण्टे-दो घण्टे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला[4] सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गयी तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घासकी पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह, और तीन दिन है। 'चार तो खंदक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की

१ ओढ़नी। २ खोमचे वाले। ३. दुश्मन। ४. भूकम्प।

छुट्टी। अपने हाथों झटका[1] करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उस फरंगी[2] मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की बर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जरनल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?" सूबेदार हजारासिंह ने मुसकराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?"

"सूबेदारजी, सच है" लहनासिंह बोला—"पर करें क्या? हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाईं में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी[3] उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जनें बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो

१. बकरा मारना। २. फ्रेंच। ३. उद्यमी।

गयी है, खाईं के दरवाजे का पहरा बदला दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाईं के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा[1] बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा[2] जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे[3] लगाऊँगा।"

"लाड़ीहोराँ[4] को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—"

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी[5] के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं

---

१. पुरोहित। २. जमीन की एक नाप। ३. पेड़। ४. स्त्री का आदर वाचक शब्द। ५. अँगीठी।

तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और "निमोनिया" से मरनेवालों को मुरब्बे[१] नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने-मराने की बात लगायी है! मरे जर्मनी और तुरक! हाँ भाइयो, कुछ गाओ।

सारी खंदक गीत से गूँज उठी आर सिपाही फिर ताजे हो गये, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

[३]

दो पहर रात गयी है। अँधेरा है! सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकिटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछाकर और लहनासिंह के दो कंबल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाईं के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—"कहो, कैसे हो?" पानी पीकर बोधा बोला—"कँपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।"

---

१. नयी नहरों के पास वर्ग-भूमि।

"ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—"

'हाँ, याद आयी। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आयी है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो ?'

"और नहीं झूठ ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता-भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आयी—'सूबेदार हजारासिंह !"

"कौन ? लपटन साहब ? हुकुम हुजूर' कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील-भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पंद्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कंबल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ, तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस

आदमी कौन रहें, इसपर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

"लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया! मुँह का भाव छिपाकर बोला—"लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियोंवाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है! लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ? याद है, पार-साल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—हाँ, हाँ—वहीं जब आप खोते[1] पर सवार थे और आपका खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था?" "बेशक, पाजी कहीं का"—"सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे

१ गधे।

अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगायेंगे।"

"हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया"—"ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे!"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ"—कहकर लहनासिंह खंदक में घुसा। अब उसे संदेह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन? वजीरासिंह?"

"हाँ, क्यों लहना? क्या कयामत आ गयी? जरा तो आँख लगने दी होती?"

[४]

"होश में आओ। कयामत आयी है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आयी है।"

"क्या?"

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा है, और बातें की हैं। सौहरा[1] साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"तो अब?"

---

१ सुसरा (गाली)।

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उनपर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन में पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ, खंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं—"

"ऐसी-तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो!"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है! चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब "आँख! मीन गौट्ट"[1]

---

१ हाय मेरे राम! (जर्मन)।

कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्च्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब, मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्त्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना "डैम" के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानों जाड़े से बचाने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो, पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने की तावीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायँगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने-

१ खटिया।

वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—'

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हेनरीमार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी।

धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—"क्या है ?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि "एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया" और औरों से सब हाल कह दिया। बंदूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव माँस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाईं में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटों में वे—

अचानक आवाज आयी—"वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल

रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खाँ दी फौज आयी! वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दी खालसा!! सत्त सिरी अकाल पुरुष!!!" और लड़ाई खतम हो गयी। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे, या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गयी। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमर-बन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि वाणभट्ट की भाषा में 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मनभर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर, उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईं-वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था! वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँचीं। फील्ड-अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये

और दूसरी में लाशें रखी गयीं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है; सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनीजी की सौगंध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी से तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। "वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

[५]

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है।

जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं; समय की धुंध बिलकुल उनपर से हट जाती है।

× × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गयी? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—"हाँ, कल हो गयी, देखते नहीं, यह रेशम के फूलोंवाला सालू?" सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

"वजीरासिंह, पानी पिला दे!"

× × ×

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेण्ट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन् चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं, लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे।

सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े[1] में से निकलकर आया। बोला—"लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा,

१ जनाने।

मिल आ ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा । सूबेदारनी मुझे जानती हैं ? कब से ? रेजीमेंट के कार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं । दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा । असीस सुनी । लहनासिंह चुप ।

"मुझे पहचाना ?"

"नहीं ।"

"तेरी कुड़माई हो गयी ?—धत्—कल हो गयी—देखते नहीं, रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली । करवट बदली । पसली का घाव बह निकला ।

"वजीरा, पानी पिला"—उसने कहा था ।

× × ×

स्वप्न चल रहा है । सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हूँ । मेरे तो भाग फूट गये । सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है । पर सरकार ने हम तीमियों[१] की घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है । फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ । उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया ।" सूबेदारनी रोने लगी—"अब दोनों जाते हैं । मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था । तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे । आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था । ऐसे ही इन

१ स्त्रियों ।

दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी[1] में चली गयी। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह, पानी पिला"—उसने कहा था।

× × ×

लहना का सिर अपनी गोदी पर रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

"कौन ? कीरतसिंह ?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—"हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट[2] पर मेरा सिर रख ले।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़[3] में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आँसू टप् टप् टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

---

१ घर में अन्दर की कोठरी—बैठक से भिन्न। २ जाँघ। ३ आषाढ़।

सुदर्शन

[जन्म सन् १८९६ ई०]

अँधेरी दुनिया

सुदर्शनजीका वास्तविक नाम पं० बद्रीनाथ है। जन्म पंजाब प्रांत के स्यालकोट शहर में हुआ। शिक्षा बी० ए० तक मिली है। प्रेमचन्द की भाँति ये भी उर्दू से हिन्दी में आये। इन्होंने कुछ दिनों तक 'चंदन' नामक उर्दू मासिक पत्र का संपादन भी किया था। आजकल बम्बई में हैं और चलचित्रों के लिए कथा, संवाद और गीत लिखते हैं। आपकी आरंभिक कहानियाँ उपदेश से बोझिल हो गई हैं पर बाद में आपने उच्च कोटि की कलापूर्ण कहानियाँ लिखीं। राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर तो आपने कहानियाँ लिखी ही हैं पर मानवीय सम्बन्धों और जीवन के गंभीर तथ्यों की व्यंजना करनेवाली आपकी रचनाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हुई हैं। आपकी भाषा चलती, मुहाविरेदार और सजीव है।

'अँधेरी दुनिया' सुदर्शन जी की उन कहानियों में है जिनमें उनका वर्णन-कौशल और मानव-मनोवृत्तियों के प्रकाशन की उनकी पटुता चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई है। इस कहानी में अंधी रजनी अपनी कथा स्वयं कहती है। अंधे के लिए यह दृश्यजगत् अँधेरी दुनिया है! अपनी इसी दुनिया की अनुभूतियों को रजनी ने इतनी मार्मिकता से बतलाया है कि उसकी एक-एक बात हमारे हृदय-पट पर अंकित हो जाती है। कहानी का प्रायः प्रत्येक खंड किसी न

किसी रूप में जीवन की अलग-अलग परिस्थितियों को सामने लाता है और प्रत्येक नवीन परिस्थिति में रजनी अपनी नई-नई अनुभूतियों का वर्णन करती है। रजनी के मन की छोटी से छोटी प्रतिक्रिया और उसकी मानसिक उथल-पुथल का लेखक ने अनुपम वर्णन किया है। रजनी के प्रति और उसके ऐसे दृष्टिविहीन व्यक्तियों के प्रति हमारे मनमें बरबस सहानुभूति उमड़ पड़ती है।

स्थूल दृष्टि से इस कहानी का उद्देश्य यह भी चित्रित करना है कि 'ईश्वर जो करता है, भला ही करता है। अन्याय के परदे में भी उसकी अपार दया छिपी रहती है।' अंधी रजनी की आँखें यदि ठीक हो गई होतीं तो चेचक से विकृत अपने प्यारे बच्चे और पति का रूप देखकर उसे कितनी मर्मांतक व्यथा होती!

अँधेरी दुनिया

मुझमें और तुममें बहुत भेद है। तुम सहस्रों दृश्य देखते हो, मैं केवल आवाजें सुनती हूँ। पृथ्वी, आकाश, बागबगीचे, बादल, चंद्रमा, तारे यह मेरे लिए ऐसे रहस्य हैं जो कभी न खुलेंगे। पर्वत और खोह में मेरे निकट एक ही भेद है और वह यह कि पर्वत के ऊपर चढ़ते समय दम फूल जाता है, खोह में उतरते समय गिरने का भय लगा रहता है। जब लोग कहते हैं, यह पर्वत कैसा सुन्दर है, वह खोह कैसी भयानक है, तब मैं इन दोनों के अर्थ नहीं समझ सकती। अपने मस्तिष्क पर आत्मा की पूरी शक्ति से जोर डालती हूँ। परन्तु मस्तिष्क काम नहीं करता और मैं छटपटाकर रह जाती हूँ। शस्यश्यामल खेतों की हरियाली, सुनील जल के स्रोतों की सुन्दरता, बच्चों की मनोहरता, पुरुष का सौंदर्य, स्त्री का रूप-लावण्य, इन्द्रधनुष का रंग, काली घटा का जादू, चंद्रमा की छटा, फूलों का निखार, यह समस्त शब्द मेरे निकट विस्तृत और अंधकारमय वायुमंडल के भिन्न-भिन्न भागों के नाम हैं, इसके सिवा मैं और कुछ न समझ सकती हूँ, न समझती हूँ। मैं अन्धी हूँ, मेरा संसार एक अंधेरी लम्बी यात्रा है और शब्द उसके पड़ाव हैं। जिस प्रकार कहते हैं, समुद्र में तरंगें उठती हैं और बैठ जाती हैं, उसी प्रकार मेरी इस अँधेरी दुनिया में अनेक शब्द उठते हैं और मर जाते हैं। मैं शब्द को जानती हूँ, शब्द को पहचानती हूँ और उन्हीं की

सहायता से सौंदर्य, जीवन और आयु का अनुमान लगाती हूँ। जब मैं किसी बालक की तोतली बातें सुनती हूँ और जब मेरा हृदय उन्हें पसन्द करता है, तब मैं समझ लेती हूँ कि सुन्दरता इसी मीठी वाणी का नाम है। जब मैं किसी पुरुष को बातें करते पाती हूँ और उसकी बातों में मुझे वह वस्तु प्रतीत होती है जो कभी चन्द्रमा की चांदनी में और कभी शीतकाल की धूप में प्रतीत होती है तब मैं तुरन्त जान लेती हूँ कि जवानी इसी को कहते हैं। और जब मैं किसी काँपती हुई आवाज को और उसके अन्दर मर-मर जाते हुए शब्दों को सुनती हूँ तब मुझे विश्वास हो जाता है कि यह मनुष्य बूढ़ा है और शनैः-शनैः अपने शब्दों की तरह काँप काँपकर खुद भी मर रहा है। थोड़े ही दिनों में अपने स्वर के समान स्वयं भी मर जायगा और संसार के लोग जिस प्रकार उसके जीवन-काल में उसकी आवाज की परवा नहीं करते थे, ठीक उसी प्रकार मरने के पश्चात उसकी मृत्यु की परवा भी नहीं करेंगे। इतना ही नहीं मैं क्रोध और दुःख, भय और आनंद, प्रेम और दया, आश्चर्य और विस्मय, सब भावों को शब्द से ही पहचान लेती हूँ। मैं अंधी हूँ—मेरे कान ही मेरी आँखें हैं।

(२)

मैं पंजाबिन हूँ, परन्तु मेरा नाम बंगालिनों का सा है। मैंने अपने सिवा किसी दूसरी पंजाबिन लड़की का नाम रजनी नहीं सुना। मेरे पिता उपन्यासों के बहुत शौकीन हैं। सुना है, दिन-रात पढ़ते रहते हैं। उन्होंने बंगला का एक उपन्यास रजनी पढ़ा और फिर मुझे भी रजनी के नाम से पुकारने लगे। इसके पश्चात् मेरा नाम यही प्रसिद्ध हो गया। वे धनवान हैं। उन्हें रुपया पैसा की कमी नहीं है। परंतु मेरी ओर से प्रायः चिंतित रहते हैं। मैं भागवान घर में आई परंतु अभागिन बनकर। मेरे

माता-पिता मुझे देखते ही ठंढी साँस भर कर चुप हो जाते और देर तक चुपचाप बैठे रहते। मैं जान लेती थी कि इस समय मेरे संसार का अंधकार उनके हृदय के अंदर समा गया है और उनकी आँखों के आँसू उनके गालों पर बह रहे हैं मैं उनका दुख दूर करना चाहती थी, परंतु मेरे किए कुछ होता न था और मेरी बेबसी मेरे अंधे मुख पर गरमी और लाली के रूप में प्रकट हो जाती थी।

मैं जवान हुई तो मेरे माता-पिता की चिंता बढ़ने लगी। पहले पहल तो मुझे उनकी चिंता का कारण मालूम न था, परंतु थोड़े ही दिनों में सब कुछ समझ गई। वह मेरे व्याह के लिए चिंतित थे। सोचते थे, इस अंधी लड़की से कौन व्याह करने को तैयार होगा। यह चिंता उन्हें अंदर ही अंदर खाये जाती थी। सदैव उदास रहते थे। मुझे अपने दुर्भाग्य का पहली बार अनुभव हुआ। इससे पहले मुझे यह कल्पना तक न थी कि विधाता ने मेरी आँखें छीन कर मुझ पर कोई अत्याचार किया है। मैं अपनी अँधेरी दुनिया में प्रसन्न थी। परंतु अब सोचती थी, क्या जो परमात्मा अंधा कर सकता है वह यह नहीं कर सकता कि अंधे कभी जवान न हों, न उनका शरीर कभी बढ़े-फूले। यदि यह हो जाय तो अंधे अपने जीवन की भयानकतर विपत्तियों से बच जायँ और उन्हें अपने दुर्भाग्य पर दुःख और क्रोध प्रकट करने की आवश्यकता कभी प्रतीत न हो। मैंने अपने कमरे के दरवाजे बंद करके यह प्रार्थना पता नहीं कितनी बार की, परंतु उसे परमात्मा ने कभी स्वीकार न किया। यहाँ तक कि मैं परमात्मा और परमात्मा की दया दोनों से निराश हो गई और मुझे विश्वास हो गया कि परमात्मा नहीं है और यदि है तो अत्याचारी, बेपरवा और निठुर है। परन्तु अब ये विचार बदल गए हैं।

मैं सुंदरी थी। मेरा मुख, मेरा रंग, मेरा आकार सब मन को मोह लेनेवाला था। यह मेरा नहीं मेरी सहेलियों का विचार था। मैं केवल यह जानती थी कि मेरे स्वर में मिठास है। मैं अंधी हूँ, अपनी तारीफ अपने मुख से करना अच्छा नहीं लगता, परंतु अपना स्वर सुनकर मैं कभी-कभी स्वयं झूमने लग जाती थी। सुना है, हरिण अपनी कस्तूरी की सुगंध में प्रमत्त होकर उसे ढूँढ़ता फिरता है। मैं भी अपने स्वर की सुंदरता पर, यदि उसे सुंदरता कहा जा सकता हो, मोहित थी। मैं उसे छूना, हाथों में पकड़ना, हृदय से लगाना चाहती थी। परंतु मेरी यह मनोकामना न पूरी हो सकती थी, न होती थी। मैं सुंदरी थी। मेरा स्वर मीठा था। परंतु अंधी की सुंदरता देखने वाला कोई न था। यह विचार मेरी अपेक्षा मेरे माता-पिता के लिए अधिक दुखदायी था। जब कभी अकेले होते, मेरे दुर्भाग्य की चर्चा छिड़ जाती। कहते, यह उत्पन्न ही क्यों हुई, और जो हुई थी तो बचपन ही में मर जाती। अब जवान हुई है, वर नहीं मिलता। रूप रंग देखकर भूख मिटती है; परंतु आंखों के अभाव ने काम बिगाड़ दिया। अब क्या करें, परमात्मा ही है जो बिगड़ी बन जाय और तो कोई उपाय नहीं है।

यह बातें सुनकर मेरे कलेजे में आग-सी लग जाती थी।

(३)

सायंकाल था। मैं अपने कमरे में बैठी अपने कर्मों को रो रही थी। एकाएक ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई कमरे में आ गया है। यह मेरे पिता न थे, न माँ थी, न नौकर। मैं उन सबके पैरों की चाप को पहचानती थी। यह कदम मेरे कानों के लिए नये थे। मैंने सिर का कपड़ा सँभाल कर पूछा—

"कौन है ?"

किसी ने उत्तर दिया—"मैं"।

मैं चौंक पड़ी। मेरे शरीर में एक सनसनी-सी दौड़ गई। यह लाला कर्त्ताराम बैरिस्टर के सुपुत्र लाला सीताराम थे। पहले हमारे यहाँ प्रायः आते-जाते थे। उनसे और मेरे पिताजी से बहुत प्रीति थी। घर की-सी बात थी। उनके रूप-रंग के संबंध में मैं क्या कह सकती हूँ, हाँ उनकी आवाज बहुत सुकोमल और रसीली थी। वे जब बोलते थे तब मैं तन्मय हो जाती थी। जी चाहता था, उन्हीं की बात सुनती रहूँ। उनमें दिल को खींच लेने की शक्ति थी। मुझे वे दिन कभी न भूलेंगे जब वे नेम से हमारे घर आते और केवल मेरी बातें किया करते थे। उनकी इच्छा थी और इस इच्छा को उन्होंने कई बार प्रकट भी कर दिया था कि रजनी का ब्याह जल्दी कर देना चाहिए। मेरे पिता कहते, मगर उसे ब्याहना स्वीकार कौन करेगा? यह सुनकर वे चुप हो जाते। फिर थोड़ी देर पीछे ठंढी सांस भरते और तब उनके उठकर टहलने की आहट सुनाई देती। इस समय वे कैसे व्याकुल, कितने उदासीन होते थे, यह मैं अंधी भी समझ जाती थी। उनकी इन सहानुभूतियों ने मेरे हृदय-पट पर कृतज्ञता का भाव अंकित कर दिया। मैं उनके आने की बाट देखती रहती थी। यदि न आते तो उदास हो जाती थी। खाने-पीने की सुध न रहती थी। इसी तरह छः महीने निकल गए। इसके पश्चात उन्होंने हमारे यहाँ आना-जाना छोड़ दिया और आज पूरे एक साल बाद आए। मैं बैठी थी, खड़ी हो गई। इस समय मेरे शरीर का रोम रोम प्रफुल्लित हो गया। धीरे से बोली—"इतने समय तक कहाँ रहे?"

"यहीं था।"

"बड़े कठोर हो।"

कुछ उत्तर न मिला, मेरा कलेजा धड़कने लगा। खयाल आया कहीं बुरा न मान गए हों। मैंने क्षमा माँगनी चाही, परंतु किसी दैवी शक्ति ने जीभ पकड़ ली। उन्होंने थोड़ी देर ठहरकर कहा—"रजनी ?"

मैंने यह शब्द उनके मुख से सैकड़ों बार सुना था, परंतु जो बात इसमें आज थी वह इससे पहले कभी न थी। स्वर काँप रहा था, जैसे सितार के तार हिल रहे हों। उसमें कैसी मिठास थी, कैसी मोहनी, और उसके साथ मिली हुई विकलता और प्रेम। मेरी आत्मा पर मद-सा छा गया। एक क्षण के लिए मैं भूल गई कि मैं अंधी हूँ। ऐसा जान पड़ता था कि मैं आकाश में उड़ी जा रही हूँ और मेरे चारों ओर कोई मधुर संगीत अलाप रहा है। यह क्षण कैसा सुखद, कैसा अमूल्य था, उसे मैं आज तक नहीं भूल सकी। आठ वर्ष बीत चुके हैं। इस सुदीर्घकाल में कई अवसर ऐसे आए, जब मैंने यह अनुभव किया कि मेरी आत्मा इस आनंद के बोझ का सहन न कर सकेगी। परंतु यह अवसर उस एक क्षण के आनंद के सामने तुच्छ है, जब मुझे यह खयाल न रहा था कि मैं अंधी हूँ, और मेरी आँखें दुनिया की बहार देखने से वंचित हैं। एकाएक मुझे स्थान, समय और अपनी अवस्था का अनुभव हुआ। मैं अपनी लज्जा के बोझ तले दब गई और आत्मा की पूरी शक्ति से केवल एक शब्द बोल सकी।

"क्यों ?"

"तुम्हारा ब्याह होगा।"

मेरा मुँह लाल हो गया, जैसे किसी ने तमाचा मार दिया हो! फिर भी साहस से बोली—"मैं अंधी हूँ।"

"फिर ?"

"मेरे साथ कौन ब्याह करेगा ?'

अब सोचती हूँ कि उस समय ये शब्द कैसे कह दिये थे। परंतु अंधी के लिए साहस कोई बड़ी बात नहीं। लज्जा आँख में होती है, और वह न दूसरे को देख सकती है, न यह जान सकती है कि कोई दूसरा उसे देख रहा है। सीताराम कुछ देर चुप रहे। उनकी यह चुप्पी मेरे लिए संसार का सबसे बड़ा दंड था। ऐसा जान पड़ता था कि मेरे भाग्य की परीक्षा हो चुकी है और अब परिणाम निकलने को है। मेरे प्राण होठों तक आ गये। एकाएक वे आगे बढ़े और मेरे मस्तकपर धीरे से अपना हाथ रखकर बोले—"रजनी! तुम्हारे साथ मैं ब्याह करूँगा।"

मेरे सिर से बोझ उतर गया। मालूम होता है, हृदय के भाव मुख पर से पढ़े जा सकते हैं। क्योंकि सीताराम ने दूसरे क्षण में मुझे अपने बाहु-पाश में ले लिया और मेरा मुँह प्रेम से बार-बार चूमने लगे।

उस रात मुझे नींद न आई। उसका स्थान आनंद ने ले लिया था। ऐसा प्रतीत होता था, मानों मैं अपनी अँधेरी दुनिया पर शासन कर रही हूँ, और संसार मेरे प्रेम के अमर संगीत से भरपूर हो चुका है।

एक मास भी न बीतने पाया कि हमारा ब्याह हो गया।

(४)

यह मेरे जीवन का दूसरा परिच्छेद था। इस समय तक मैं शब्द-संसार में बसती थी, अब प्रेम-पथ में पाँव धरे। वे मुझे चाहते थे। मेरे बिना रह न सकते थे। मेरी पूजा करते थे। प्रायः मेरा हाथ अपने हाथ में ले लेते और मेरी प्रशंसा के पुल बाँध देते थे।

कहते, मैंने सैकड़ों युवतियाँ देखी हैं, परंतु तुम सरीखी सुंदरी आज तक न देखी है, न देखने की संभावना है। मैं पहले ये बातें सुनकर अपना मुँह हाथों से छिपा लेती थी। परंतु धीरे-धीरे यह झिझक दूर हो गई, जैसे प्रत्येक विवाहिता रमणी के लिए इस प्रकार की ठकुर-सुहातियाँ सुनना एक साधारण बात हो जाती है। वे मेरे लिए दर्पण का काम देते थे। मैं अपनी आँखों से नहीं, वरन् अपने कानों से उनकी बातों में, अपनी प्रशंसा में अपना रूप-रंग देख कर गर्व से झूमने लग जाती और समझती कि मुझ-सी सौभाग्यवती स्त्रियाँ संसार में अधिक न होंगी। इस सौभाग्य ने मेरी कई सखियाँ बना दीं। मेरा आँगन हास-विलास से गूँजता रहता था। परंतु इस हास-विलास के अंदर, इस मधुर संगीत के नीचे कभी-कभी व्याकुलता का अनुभव होने लगता था, जैसे बिल्ली के गुदगुदे पैरों में तीक्ष्ण नख छिपे रहते हैं। मैंने अपनी एक सखी से उसके जीवन के गुप्त रहस्य पूछे और तब मैंने यह तत्व समझा कि संसार में प्रत्येक वस्तु वह नहीं जो (दिखाई नहीं प्रत्युत) सुनाई देती है। न संसार में वह अभागा है जिसे प्रायः अभागा समझा जाता है। उनकी बातों ने मेरे सुखमय जीवन को और भी सुखमय बना दिया। वे मुझसे कभी रुष्ट न होते थे, न कभी बुरा-भला कहते थे। वे इसे मनुष्यत्व से गिरा हुआ समझते थे। सोचते थे, यह मन में क्या कहेगी। मेरे नेत्रों का अभाव मेरे लिए दैवी सुख का कारण बन गया, मेरा काम स्वयं करते थे। मैं रोकती तो कहते, इससे मुझे आनंद मिलता है। तुम कुछ ख्याल न करो। संसार की समस्त स्त्रियाँ अपने पतियों की सेवा करती हैं। यदि एक पति अपनी स्त्री का थोड़ा-सा काम कर देगा तो संसार में प्रलय न आ जायगा। उनके पास रुपया था, कई नौकर रखे हुए थे, परंतु वे जनाने में न आ सकते थे। रोटी

बनाने के लिए एक मिसरानी थी, मेरा जी बहलाने के लिए एक और स्त्री। परंतु फिर भी कई काम ऐसे होते हैं, जो गृहिणी को स्वयं करने पड़ते हैं। पर मैं अंधी थी, इसलिए ऐसे काम वे स्वयं करते थे, और उस समय ऐसे प्रसन्न होते थे जैसे बच्चे को बढ़िया खिलौने मिल गए हों। उनकी दिलजोइयों ने मुझे उनकी पुजारिन बना दिया। मैं उनकी पूजा करने लगी। सोचती थी, ऐसे मनुष्य भी संसार में थोड़े होंगे। उन्हें मेरी क्या परवा है। चाहें तो मुझ जैसी बीसियों खरीद लें। यह उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं। परन्तु वे फिर भी मुझे चाहते हैं, मानों मैं किसी देश की राजकुमारी हूँ। मैं पहले उनसे प्रेम करती थी, फिर उनकी पूजा करने लगी। प्रेम ने श्रद्धा का रूप धारण कर लिया। मेरा जीवन जीवन न था, सुखमय स्वप्न था, जो भय, अधीरता, अशांति और दुःख से कभी नष्ट नहीं हुआ था। उनके प्रेम ने दैवी त्रुटि पूरी कर दी। वह मेरी अंधकारमय सृष्टि के प्रदीप थे, उनकी बातचीत मेरे नीरस जीवन का सरस संगीत। मैं चाहती थी, वे मेरे पास से उठकर कहीं न जायँ। मैं उनके एक-एक पल, एक-एक क्षण पर अधिकार जमाना चाहती थी। जब कभी वे आने में थोड़ी सी भी देर कर देते तब मेरा दम घुटने लगता था, मानों कमरे से हवा निकाल दी गई हो। यह व्याकुलता कैसी जीवनमय है, कैसी प्रेमपूर्ण! इसे साधारण लोग न समझेंगे। इसको केवल वही जान सकते हैं जिनके हृदय को प्रेम के अंधे देवता भगवान् कामदेव ने पुष्पों के बाण मार-मारकर घायल कर दिया है।

इसी प्रकार पाँच वर्ष का समय, जिसे बेपरवाही और सुख के जीवन ने बहुत छोटा बना दिया था, बीत गया और मैं एक बच्चे की माँ बन गई। मेरे आनन्द का ठिकाना न था। यह

बच्चा मेरी और उनकी परस्पर प्रीति की जीवित जाग्रत् मूर्ति था, जिस पर हम दोनों जी-जान से निछावर थे। यह बच्चा (मैंने सुना) बहुत सुन्दर था। मेरी सखियाँ कहती थीं, तुम रजनी (रात्रि) हो, तुम्हारा बेटा सूरज है। इसका रूप मन को मोह लेता है। जो देखता है प्रसन्न हो जाता है। मैं यह सुनकर फूली न समाती। हृदय में हर्ष की तरंगे उठने लगतीं, जिस तरह किसी ने बाजे पर हाथ रख दिया हो। फिर पूछती, इसकी आँखें कैसी हैं? वे उत्तर देतीं, बड़ी बड़ी; हिरन का बच्चा मालूम होता है, परमेश्वर ने माँ की कसर बच्चे की आँखों में निकाल दी है।

स्त्री की कई स्थितियाँ हैं। वह बेटी है, बहन है, स्त्री है। परंतु जो प्रेम उसमें माँ बनकर उत्पन्न होता है उसकी उपमा इस नश्वर संसार में न मिलेगी। मुझे माता-पिता से प्रेम था, पति पर श्रद्धा। उनको देखने के लिए मैं कभी-कभी अधीर हो उठती थी। परंतु उस अधीरता की इस नई अधीरता के साथ कोई तुलना न थी, जो अपने बच्चे का मुख चूमते समय, उसकी आँखों पर हाथ फेरते समय, उसे हृदय से लगाते समय, मेरे नारी-हृदय में उत्पन्न हो जाती थी। उस समय मैं घबरा कर खड़ी हो जाती, और परमात्मा के विरुद्ध सैकड़ों शब्द निकाल देती। मैं चाहती थी, आह! नहीं बता सकती, कितना चाहती थी कि मेरी आँखें एक क्षण के लिए खुल जायँ और मैं अपने बच्चे को एक नज़र देख लूँ। परंतु यह इच्छा पूर्ण न होती थी। मैं अपने दुर्भाग्य को अब अनुभव करने लगी।

(५)

धीरे-धीरे मेरी व्याकुलता ने उन्हें भी उदास कर दिया, जिस तरह एक घर में आग लग गई हो तो धुआँ दूसरे घर में भी

पहुँच जाता है। प्रायः चिंतित रहने लगे। वे मेरे भावों को समझ गये थे। अब उनके स्वर में वह मनोहरता न थी, न शब्दों में वह सरसता थी। बातचीत के ढंग में भी अंतर आ गया था। बोलते-बोलते चुप हो जाते। निस्संदेह उस समय यदि मेरे नेत्रों से अंधकार का पर्दा उठ जाता तो मैं उनकी पलकों पर आँसुओं की बूँदों के सिवा और कुछ न देखती। एक दिन बाहर से आये तो घबराये हुए थे। आते ही बोले, "रजनी।"

मैंने धीरे से उत्तर दिया, "जी।"

"तुम कब अंधी हुई थीं। मेरा विचार है, तुम जन्म से अंधी नहीं हो।"

"नहीं।"

"तो तुम्हारी आँखें खराब हुए कितना समय हुआ ?"

"मैं उस समय तीन वर्ष की थी।"

"तुम्हें अच्छी तरह याद है ? तुम्हें विश्वास है ?"

"हाँ। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।"

उन्होंने मुझे खींच कर गले से लगा लिया और बोले "परमात्मा को धन्यवाद है। एक बार अंतिम प्रयत्न करूँगा।"

आवाज़ से मालूम होता था, जैसे उनके सिर से कोई बोझ उतर गया है। मैंने उनके मुख पर हाथ फेरते हुए पूछा "बात क्या है ?"

"मैं चाहता हूँ, तुम्हारी आँखें खुल जायँ, तुम भी संसार के अन्य जीवों के समान देखने लगो। मेरे उस समय के आनंद का कोई अनुमान नहीं लगा सकता। आह! यदि ऐसा हो जाय तो—"

यह कहते कहते वे अपने काल्पनिक सुख में निमग्न हो गये। थोड़ी देर के बाद फिर बोले—"डाक्टर कहते हैं कि जन्मांध के

सिवा सबकी आँखें ठीक हो सकती हैं, परंतु डाक्टर निपुण होना चाहिए। मेरा एक मित्र अमरीका गया था, आँखें बनाना सीख कर आया है। थोड़े ही समय में उनके नाम की दूर दूर तक धूम मच गई है। आज उनसे भेंट हुई। बड़े प्रेम से मिले और बलात खींच कर अपने मकान पर ले गये। वहाँ बातचीत में तुम्हारा जिक्र आ गया। बोले यदि जन्मांध नहीं तो मैं एक महीने में ठीक कर दूँगा।"

मैं कुछ देर चुप रही और फिर बोली—"रहने दो, मैं अच्छी होकर क्या करूँगी।"

"नहीं अब मैं अपनी ओर से पूरा-पूरा प्रयल करूँगा।'

"मुझे डर है कि मैं—"

"यदि आँखें खुल गईं तो प्रसन्न हो जाओगी।"

"और यदि प्रयत्न निष्फल गया तो फिर?"

"भगवान् का नाम लो। उसी के हाथ में सबकी लाज है। इस समय सौ से अधिक अंधों का इलाज कर चुका है, परंतु एक के सिवा सब उसके गुण गा रहे हैं।'

मैंने धड़कते हुए दिल की धड़कन दबा कर कहा—"ऐसा योग्य है?"

"योग्य क्या इस युग का धन्वन्तरि है।"

"तो तुम्हें आशा है? मैं देखने लगूँगी?"

"आशा की क्या बात है। मुझे तो पूरा विश्वास है कि अब मेरा भाग्य पलटनेमें देर नहीं।"

मैंने बेटे को हृदय से लगा लिया और रोने लगी। हृदय में विचार-तरंगे उठने लगीं अब वहाँ निराशा की शान्ति नहीं रही थी, उसका स्थान आशामयी अशांति ने ले लिया था। मस्तिष्क में सहस्रों विचार आ रहे थे। उनके पुत्र के, पृथ्वी आकाश के,

फूलों के, सूरज के, चंद्रमा तारों के रूप के विषय में अनुमान के घोड़े दौड़ रहे थे। सोचती थी आँखें खुल जायँ तो एक मंदिर बनवा दूँ, तीर्थ-यात्रा करूँ, और अनाथालयों के नाम चंदा बाँध दूँ, माता-पिता सुनेंगे तो दंग रह जायँगे, सहेलियाँ बधाई देने आयँगी। परंतु इस खुशी में एक बड़ा भोज देना आवश्यक हो जायगा। उनकी कितनी उत्कंठा है कि शाम को मुझे साथ लेकर बग्घी पर निकलें, परन्तु नेत्रों का दोष रास्ता रोक लेता है। यदि डाक्टर का परिश्रम सफल हो जाय तो हाथों के कड़े उतार दूँ और उसकी पत्नी को बुलाकर रेशमी जोड़ा दूँ।

मैं डाक्टर के आने की इस तरह प्रतीक्षा करने लगी, जैसे उसके आने के साथ ही मेरी आँखें खुल जायँगी। आशा ने मस्तिष्क को उलझन में डाल दिया था। एकाएक दरवाजे पर किसी मोटर के आकर रुकने की आवाज आई। मेरी देह काँपने लगी। निराशा के विचार ने गला पकड़ लिया। इतने में वे अंदर आ गए और बोले—"डाक्टर साहब आ गये हैं।"

मैंने साड़ी को सिर पर ठीक कर लिया और सँभल कर बैठी, परन्तु हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। डाक्टर साहब मेरी आँखों को देखने लगे। कुछ देर सन्नाटा रहा और तब उन्होंने किलकारी मारकर कहा—"मुझे पूरा निश्चय है कि तुम्हारी आँखें बन जायँगी।"

जितना सुख किसी भिखारिणी को यह सुनकर होता है कि तुम्हें राज मिल जायगा उससे अधिक सुख मुझे डाक्टर साहब के इस बचन से हुआ और मैंने हठात् अपने स्थान से उठकर दोनों हाथ बाँधे और उमड़ते हुए हार्दिक भावों से काँपती हुई आवाज में कहा—

"डाक्टर साहब ! आपका यह उपकार जन्मभर न भूलेगा ।"

उस समय मेरी आवाज में प्रार्थना और प्रफुल्लता के वे अंश मिले हुए थे जो केवल अपराधियों की ही आवाज में पाये जाते है। आँखों के खुल जाने की आशा ने वर्षों की शान्ति और सन्तोष को इस प्रकार उड़ा दिया था, जैसे किसी सेठ के आने से पहले-पहल मालिक-मकान अपने गरीब किरायादार को निठुरता से बाहर निकाल देता है।

आपरेशन हुआ और बड़ी सफलता से हुआ। वे फूले न समाते थे। कहते थे, अब केवल थोड़े दिनों की बात है, तुम संसार के प्रत्येक दृश्य को देख सकोगी। मेरा सुख पहले अधूरा था, अब पूरा होगा। मुझसे कहते, तुम्हें इस समय तक पता नहीं और यदि पता है तो तुम पूर्ण रूप से अनुभव नहीं कर सकतीं कि आँखों का न होना तुम पर प्रकृति का कैसा अत्याचार था। तनिक यह पट्टी खुल जाने दो, फिर पूछूँगा। एक दिन के लिए आँखें दुखने लगें और अँधेरे में बैठना पड़े तो कलेजा घबराने लगता है। जी चाहता है, दरवाजे तोड़ कर बाहर निकल जायँ, परन्तु तुम लगातार कई वर्षों से इसी अवस्था में हो और फिर भी—"

मैंने अपनी व्याकुलता से भरी हुई प्रसन्नता को छिपाने की चेष्टा करते हुए कहा—"तो क्या मैं देखने लगूँगी ? यह आप को निश्चय है ?"

"निस्सन्देह, तेरह दिन के पश्चात् ।"

"बहुत प्रसन्न हो रहे होंगे ?"

"कुछ न पूछो। मेरा एक-एक क्षण साल-साल के बराबर बीत रहा है। मैं झुँझला उठता हूँ कि यह समय शीघ्र क्यों नहीं बीत जाता। मैं तेरहवें दिन के लिए पागल हो रहा हूँ।"

"और यदि यह प्रसन्नता, यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई, तो ?"

"यह नहीं हो सकता। असंभव है।'

"आशा प्रायः धोखे दिया करती है।"

"परंतु यह आशा नहीं है।"

सचमुच यह आशा नहीं थी। स्वयं मुझे भी निश्चय था कि यह आशा नहीं है। फिर भी मैंने उनके हृदय की थाह लेने और अपने विश्वास को और दृढ़ करने के विचार से पूछा—"क्यों ?'

"डाक्टर ने कहा है ?"

"परंतु डाक्टर परमात्मा नहीं है।"

थोड़ी देर के लिए वे चुप हो गए, जैसे आनंदकी कल्पना में किसी दुख का विचार आ जाय और फिर मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में दबा कर बोले—'डाक्टर अपनी विद्या में अद्वितीय है। उसका वचन झूठा नहीं हो सकता। मैं इस समय ऐसा प्रसन्न हूँ, जैसे किसी राजा ने इंपीरियल बैंक के नाम चेक दे दिया हो। अब रुपया मिल जाने में कोई संदेह नहीं है। केवल तेरहवें दिन की प्रतीक्षा है। न राजा दीवालिया हो सकता है, न डाक्टर का वचन झूठा हो सकता है। तुम यों ही अपने संदेह से मेरे हृदय को विकल कर रही हो।"

बारह दिन बीत गये। अब केवल एक दिन शेष था। सोचती थी, कल क्या होगा ? कभी आशा हृदय की कली खिला देती थी, कभी निराशा हृदय में हलचल मचा देती थी। मैंने आँखों पर पट्टी बाँधकर बारह दिन बिता दिए थे, अब एक दिन बिताना कठिन हो गया, जैसे यात्री पड़ाव के निकट पहुँचकर घबरा जाता है। उस समय उसके हृदय में कैसी उद्विग्नता होती है, कैसी अधीरता। वह घंटों की राह मिनटों में तय करना चाहता है। बार बार झुँझला उठता है, जैसे किसी ने काँटे चुभो दिये हों। यही दशा मेरी थी। मैं चाहती थी, यह दिन एक क्षण बन

कर उड़ जाय और मैं पट्टी आँखों से उतार कर फेंक दूँ। परन्तु प्रकृति के अटल नियम को किसने बदला है। समय ने उसी प्रकार धीरे धीरे अपने मिनटों के पैरों से चलना जारी रक्खा। उसे मेरी क्या परवा थी ?

सायंकाल था। वे कचहरी से वापस आये और सूरजपाल को (यह मेरे बेटे का नाम है) उठाये हुए कमरे के अन्दर आये और मेरे पास बैठकर बोले "कल इस समय क्या होगा ?"

मैंने हाथ बाँधकर ऊपर की ओर सिर उठाया और कहा—"परमात्मा दया करे।"

"और वह अवश्य करेगा।"

जैसे ढोलक पर हाथ मारने से गूँज उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इस वाक्य से मेरे हृदय में गूँज उत्पन्न हुई। यह गूँज कैसी प्यारी थी, कैसी आनन्द दायक ! इसमें दूर के ढोल का सुहावनापन था, स्वप्न-संगीत का जादू ! सोचने लगी क्या यह सम्मोहिनी निकट पहुँचकर भी ऐसी ही बनी रहेगी, क्या यह जादू जागने के पश्चात् भी स्थिर रहेगा ? एकाएक उन्होंने कहा—"कैसी गरमी है। बैठना कठिन हो गया।"

मैंने पंखे की रस्सी पकड़ ली और कहा—"पंखा करूँ ?'

कमरे में गरमी कोई इतनी अधिक न थी, परन्तु वे बाहर से आये थे, इसलिये उनका दम घुटने लगा। क्रोध से बोले—"पंखा कुली कहा गया। मैं मार-मारकर उसका दम निकाल दूँगा।"

चलो जाने दो, बेचारा सारा दिन पंखा खींचता रहता है। थक कर ज़रा बाहर चला गया होगा। खिड़की क्यों न खोल दूँ, सूरज भी घबरा रहा है।

यह सुनकर वह उछल पड़े, जैसे किसी गठकतरे ने उसकी जेब में हाथ डाल दिया हो, बोले—"क्या कहती हो, खिड़की

खोल दूँ। तुम्हें मालूम नहीं डाक्टर ने कितना सावधान रहने को कहा है ?"

"परंतु अब तो सायंकाल हो चुका है। कितने बजे होंगे ?"

"साढ़े छः बज चुके हैं।"

"तो अब क्या हर्ज है ? थोड़ी सी खिड़की खोल दो, मेरी आँखों पर पट्टी बँधी है।"

उन्होंने बहुत कहा, पर मैंने एक न सुनी और उठकर खिड़की खोल दी। सूरज ने तालियाँ बजाईं और खिलखिलाकर हँसने लगा। उसकी हँसी देखने के लिए मैं अधीर हो गई, परंतु आँखों पर पट्टी बँधी थी।

इतने में सूरज खिड़की पर चढ़ गया और खेलने लगा। वह इस समय बहुत ही प्रसन्न था। पक्षियों की नाईं चहकता था। उसे कोई विचार, कोई भय, कोई चिंता न थी।

"सूरज शीशा छोड़ दो, टूट जायगा।"

परंतु सूरज ने सुना अनसुना कर दिया और शीशे के सामने खड़ा होकर अपना मुँह देखने लगा। एकाएक उसने (मैंने पीछे सुना था) शीशे में इस तरह मुँह बनाकर देखा कि वे सहसा चिल्ला उठे—"ज़रा देखना!"

मुझे अपनी अवस्था का विचार न रहा। मैं भूल गई कि वह समय बड़ा विकट है। मैं अंधी हूँ, मुझे एक दिन के लिए संतोष करना चाहिये। इस समय की थोड़ी सी असावधानी मेरे सारे जीवन का नाश कर देगी और फिर मेरी आँखों को कोई शक्ति किसी उपाय से भी न खोल सकेगी, यह विचार न रहा। मैं पागल हो गई। मेरी ऐसी अवस्था आज तक कभी न हुई थी। मेरे हाथ मेरे बस में न रहे। उन्होंने पट्टी को उतार कर भूमि पर फेंक दिया और मैंने आँखें खोलीं।

मैं देख सकती थी। मैंने एक ही दृष्टि में उनको, बेटे को और खिड़की में से दिखाई देने वाले बाहर के बाग के एक भाग को देखा, और खुशी से चिल्ला उठी—'मैंने तुमको देख लिया !'

उन्होंने आश्चर्य, भय और प्रसन्नता की मिली-जुली दृष्टि से मेरी ओर देखा। परन्तु अभी मेरी आँखें उनकी आँखों से मिलने न पाई थीं, कि चारों ओर फिर अंधकार छा गया और मेरी अँधेरी दुनिया ने उनकी प्यारी-प्यारी सूरतों को फिर अपने अंदर छिपा लिया। मैंने ठंढी आह भरी और पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बैंक से रुपया मिल गया था और समय से पहले। परन्तु मेरी असावधानी ने उसे पानी में गिरा दिया।

अब मेरे लिए कोई आशा न थी। मैंने उसके द्वार अपने हाथों से बन्द कर लिये थे। कई दिन तक रोती रही। वे मुझे धीरज देते थे। कहते थे, न सही, तुम जीती रहो, इसी प्रकार निभ जायगी। परन्तु इन धीरज की बातों से मुझको संतोष न होता था, उलटा मेरे घावों पर नोन छिड़क जाता था। मेरा विचार था कि एक बार आँखें खुल जाने से मैं प्रसन्न हो जाऊँगी, यह झूठ सिद्ध हुआ। एक क्षण की दृष्टि से अपने दुर्भाग्य का दुःखमय अनुभव हो जाता है। इसका अनुमोदन हो गया।

(७)

कहते हैं, प्रत्येक काली घटा के गिर्द सफेद धारी होती है। मेरी विपत्ति अपने साथ एक ज्योति लाई। यह आशा की ज्योति न थी जो कभी बढ़ती है, कभी घट जाती है। यह नैराश्य विश्वास की ज्योति थी, जो सदा बढ़ती है, घटती नहीं। मैं पति और पुत्र दोनों को देख चुकी थी। सुना है, फूल सुन्दर होते हैं। यदि यह सच है तो मैं कह सकती हूँ कि मैंने क्षण मात्र की दृष्टि में दो अति सुन्दर फूल देखे हैं और उनसे अच्छी वस्तु देखना

मेरे लिये संभव नहीं। वे आज भी मेरी अंधकारमयी सृष्टि में उसी प्रकार हरे-भरे और प्रफुल्लित हैं। उनकी सूरतें मेरे हृदय-पट पर अंकित हो चुकी हैं और संसार की कोई शक्ति, कोई वस्तु, कोई सत्ता उन्हें न मिटाती है, न मिटा सकती है। यदि मैं अधिक मनुष्य देख लेती तो कदाचित मुझे कभी उनका भी विचार आ जाता और वे भी मेरे हृदय की चित्रशाला में थोड़े से स्थान पर अंकित हो जाते। अथवा उनके चेहरों पर मेरे पति और पुत्र के चेहरों की रूप-रेखायें अस्त-व्यस्त हो जातीं। परन्तु अब यह आशंका नहीं रही। मैंने बाहर की ओर से आँखें बन्द करके उन दो सुन्दर मूर्तियों को अपने हृदय में अमर-जीवन दे दिया है।

कुछ समय के बाद नगर में चेचक फूट पड़ी। सूरजपाल रोके न रुकता था। दौड़-दौड़कर बाहर चला जाता था। वे कहते थे, इसे बाहर न निकलने दो, यह मेरे जीवन का आधार है, यदि इसे कुछ हो गया तो मेरा जीवन नष्ट हो जायगा। परंतु बच्चे के पैरों में जंजीर किसने डाली है। वह नौकरों की आँखें बचाकर निकल जाता और कई-कई घंटे लड़कों के साथ खेलता रहता था। अंत में उसे भी उस रोग ने जकड़ लिया। वे घबरा गये, जैसे उन पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा हो। दिन-रात पास बैठे रहते। उन्होंने कचहरी जाना छोड़ दिया था। कहते थे, परमात्मा करे मैं इस मुकदमा में जीत जाऊँ। मैं और कुछ नहीं चाहता, मेरा बच्चा बच जाय। जिस प्रकार हिरन अपने बच्चे को बचाने के लिए स्वयं अपने आप को मृत्यु के मुँह में दे देता है, उसी प्रकार उन्होंने सूरजपाल की खातिर अपना जीवन ख़तरे में डाल दिया। हर समय साथ लेटे रहते थे। परिणाम यह हुआ कि सूरजपाल की सेवा-शुश्रूषा करते-करते आप भी बीमार हो गये। अब मेरे व्या-

कुल हृदय में तूफान उठने लगे। मेरे पास केवल दो फूल थे। और उन दोनों को प्रकृति का निर्दयी हाथ तोड़ने के लिए पीछे पड़ा था। परंतु मैंने अपनी जान लड़ा दी और अपने दिखाई देने वाले समान दिन-रात को उनकी सेवा में एक कर दिया। और परमात्मा ने मुझ अबला के परिश्रम को सफल किया—दोनों नीरोग हो गये।

मेरे आनंद का ठिकाना न था। आँगन में उछलती फिरती थी, जैसे किसी का डूबा हुआ धन मिल जाय। उन्होंने आकर कृतज्ञता के भाव से मेरा हाथ अपने निर्बल हाथ में लिया और धीरे से कहा—"तुमने हमें मृत्यु के मुख से खींचा है, नहीं तो—।"

मैंने उनके मुँह पर हाथ रख दिया और कहा—"बस उसके आगे एक शब्द भी न कहो। मेरे कान यह सुनने की शक्ति नहीं रखते।"

वे चुप हो गये, परंतु थोड़ी देर के बाद मुझे मालूम हुआ कि वे रो रहे हैं। मेरे हाथ पर पानी की दो गरम बूँदें टपकीं।

"क्यों, रोते क्यों हो ? अब तो कोई ख़तरा नहीं।"

यह सुनकर वे सिसकियाँ भर-भर कर रोने लगे। मैं उनके गले से लिपट गई, जिस प्रकार सूरजपाल मेरे गले लिपट जाया करता है। मैंने पूछा—"तुम बताओ, तुम क्यों रो रहे हो ? मेरा कलेजा फट जायगा।"

उन्होंने उत्तर देने की चेष्टा की, परन्तु उनके प्रत्येक शब्द को उनकी लगातार सिसकियों ने इस प्रकार निगल लिया, जिस प्रकार किसी अंधी लड़की की नेत्र-कल्पनाओं को व्याकुलता निगल जाती है। वे रो रहे थे। जब दुःख का बोझ हल्का हुआ और उनकी जिह्वा को बोलने की शक्ति प्राप्त हुई तब उन्होंने

मेरा हाथ अपने मुँह पर रख लिया और रुक रुक कर कहा, "यदि तुम देख सकतीं तो तुम्हें ऐसा दृश्य दिखाई देता कि तुम मूर्च्छित हो जातीं।"

मैं कुछ समझ न सकी, मस्तिष्क पर जोर देते हुए बोली— "तुम्हारा क्या अभिप्राय है। साफ-साफ कहो।"

"मेरी और तुम्हारे सूरजपाल की सूरत ऐसी बदल गई है कि देखकर डर आता है।"

यह कहकर वे चुप हो गये।

मैं बैठी थी, खड़ी हो गई, और चिल्ला कर बोली—

"परन्तु मेरी आँखों में जो तुम्हारी सूरतें समा चुकी हैं, उन्हें कौन बदल सकता है। संसार की आँखों में तुम बदल जाओ, परन्तु मेरी आँखों में तुम सदा वैसे ही सुन्दर, वैसे ही मनोहर हो। मैं सोचती थी, परमात्मा ने दूसरी बार मेरी आँखें छीनकर मुझ पर अन्याय किया है। परन्तु आज मालूम हुआ कि इस अन्याय के परदे में उसकी अपार दया छिपी थी।"

यह कहकर मैंने उनके गले में भुजायें डाल दीं और उनके बालों में धीरे-धीरे अपनी उँगलियाँ फेरने लगी।

इस समय मेरी अँधेरी दुनिया में ऐसा प्रकाश था, जो बयान नहीं किया जा सकता।

श्री प्रेमचंद

[जीवन-काल सन् १८८०—१९३६ ई०]

ईदगाह

प्रेमचंद जी का असली नाम धनपतराय था। जन्म बनारसके निकट पांडेपुर नामक गाँव में हुआ। पिता डाकखाने में क्लर्क थे। आठ वर्ष की अवस्था में माता और चौदहवें में पिता का देहांत हो गया। बचपन गरीबी और संकट में बीता। जीविका अर्जित करते हुए बी. ए. पास किया और अध्यापक के पद से उन्नति करते-करते स्कूलों के सब-डिप्टी इन्स्पेक्टर हो गए। देशभक्ति की भावना से भरी रचनाएँ लिखने के कारण सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। १९२० के असहयोग आंदोलन के समय सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया और शेष जीवन हिंदी साहित्य की सेवा में लगा दिया। अपने जीवन-काल में 'माधुरी', 'हंस' और 'जागरण'नामक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। उर्दू-लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो जाने के बाद ये हिंदी में आये। हिंदी में इनकी पहली कहानी 'पंचपरमेश्वर' १९१६ ई० में 'सरस्वती' में छपी।

प्रेमचंदजी हिंदी के युगांतरकारी कथाकार हैं। इनकी सामाजिक चेतना बड़ी व्यापक और गंभीर थी। इनकी कहानियों में भारतीय-जीवन, विशेषतः ग्रामीण-जीवन का यथार्थ और मार्मिक चित्रण हुआ है। मानव-स्वभाव का इन्हें गहरा और विशद ज्ञान था। इनका सारा साहित्य मानवीय वृत्तियों तथा जीवन की विविध परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण कर मनुष्य को सहानुभूतिशील और उदारचेता बनाने का प्रयास करता है। इनकी अनेक रचनाओं के अनुवाद देशी और विदेशी भाषाओं में निकल चुके हैं। 'प्रेमपचीसी', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेमद्वादशी', 'सप्तसरोज', 'प्रेमतीर्थ' 'प्रेमप्रसून' 'नव-निधि', 'कफन' और 'मानसरोवर' (८ भाग) आदि इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

प्रस्तुत कहानी में अनाथ बालक हमीद की निर्धनता और उसके भाग्यशाली साथियों की 'सुखसंपन्नता' का वैषम्य बड़ी मार्मिकता से चित्रित करते हुए यह दिखलाया गया है कि अभावों के बीच में पलते हुए बालक के जीवन में परिस्थितियों की प्रेरणा से कैसा संयम आ जाता है। ईद के मेले में और लड़के खिलौने और मिठाइयाँ खरीदते हैं तो अपने तीन पैसों की पूँजी से हामिद लोहे का चिमटा मोल लेता है—अपनी बूढ़ी दादी के लिए ! बच्चे का यह विवेक और संयम बुढ़िया के लिए किस प्रकार अनिर्वचनीय आनंद और सांत्वना का कारण बन गया यह बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है।

कहानी का आरंभ एक हर्षोल्लासपूर्ण ग्रामीण वातावरण के बीच में हुआ है जिसके भीतर न जाने कितना दुःख-दर्द छिपा पड़ा है। निम्नवर्ग के ग्रामीणोंकी गरीबीका आभास लेखक ने केवल संकेत से मार्मिक रूप में दिया है। इस प्रसंग में हमीद की बुढ़िया दादी की अभावमयता का वर्णन तो हृदय को द्रवीभूत कर देता है।

बाल-प्रकृतिका अत्यंत स्वाभाविक और विस्तृत चित्रण इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है। दृश्य-वर्णन और मनोवृत्तियों का उद्घाटन करने में प्रेमचंद की वर्णन-शैली का अनूठापन यहाँ खूब देखने को मिलता है। 'कलात्मक संयम' का निर्वाह इस कहानी में भलीभाँति हुआ है—इसमें कहीं भी अनावश्यक विस्तार नहीं होने पाया है। स्पष्ट रूप से उपदेश देने की प्रवृत्ति ने प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों को कला की दृष्टि से पूर्णता प्राप्त करने में थोड़ी बाधा डाल दी है पर उनकी इस रचना में यह बात नहीं पायी जाती। इस कहानी से प्रच्छन्न संकेत द्वारा यह आशय निकाला जा सकता है कि फिजूल-खर्ची से बचनेवाले और मन पर संयम रखनेवाले बालक अपने माता-पिता के आंतरिक सुख और संतोष के कारण बनते हैं।

प्रेमचंद जी की भाषा-शैली सजीव और मुहाविरेदार होती है। बीच-बीच में मार्मिक सूक्तियों और अछूती उपमाओं के विधान से वह और समृद्ध हो गई है। प्रस्तुत कहानी का आरंभ अत्यंत आकर्षक और अंत व्यंजनापूर्ण है।

ईदगाह

रमजान के पूरे तीस रोजों के बाद आज ईद आयी है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानों संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है। पड़ोस के घर से सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायेगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोजा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोजे बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गयी। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिंताओं से क्या प्रयोजन! सेंवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेंवैयाँ खायँगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी

अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस-बारह! उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीजें लायेंगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गयी। किसी को पता न चला, क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुननेवाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल ही में सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से बिदा हो गयी। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गये हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गयी हैं; इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज है, और फिर बच्चों की आशा! उसकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आयेंगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती! इस अन्धकार और

निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं; लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अंदर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आये, हामिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—"तुम डरना नहीं अम्मा, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।"

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है। उसे कैसे अकेले मेले जाने दे। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो! नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं-सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे! पैर में छाले पड़ जायेंगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी; लेकिन यहाँ सेंवैयाँ कौन पकायेगा? पैसे होते तो लौटते लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीजें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिये थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए; लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गयी तो क्या करती। हामिद के लिए कुछ नहीं है, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगाये। धोबन, और नाइन और मेहतरानी और चूड़िहारिन सभी तो आयेंगी। सभी को सेंवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस किस से मुँह चुरायेगी। और मुँह क्यों चुराये?

साल-भर का त्योहार है। जिन्दगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायँगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सब-के-सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथवालों का इन्तजार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गये हैं। वह कभी थक सकता है! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चार-दीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फर्लांग पर हैं! खूब हँस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लबघर है! इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे। सब लड़के नहीं हैं जी। बड़े-बड़े आदमी हैं सच। उनकी बड़ी बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े हो गये, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर। हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं; बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज मार खाते हैं, काम से जी चुरानेवाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या! क्लबघर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदे की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों-दाढ़ीवाले। और मेमें भी खेलती हैं, सच। हमारी अम्माँ को

वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें। घूमाते ही लुढ़क जायँ।

महमूद ने कहा—"हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।"

मोहसिन बोला—"चलो, मनों आटा पीस डालती हैं। जरा-सा बैट पकड़ लेंगी, तो हाथ काँपने लगेंगे। सैकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अँधेरा छा जाय।'

महमूद—"लेकिन दौड़तीं तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं।"

मोहसिन—"हाँ, उछल-कूद नहीं सकतीं; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गयी थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतना तेज दौड़ीं कि मैं उन्हें पा न सका, सच।"

आगे चले। हलवाइयों की दूकानें शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है? देखो न, एक-एक दूकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है बिलकुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यकीन न आया—"ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जायँगे?"

मोहसिन ने कहा—"जिन्नात को रुपये की क्या कमी? जिस खजाने में चाहें चले जायँ। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीर जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए, उसे टोकरों जवाहरात दे दिये। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जायँ।"

हामिद ने फिर पूछा—"जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे ?"

मोहसिन—"एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। जमीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाय।"

हामिद—"लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे ? कोई मुझे वह मन्तर बता दे, तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।"

मोहसिन—"अब यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज चोरी जाय, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झक मारकर चौधरी के पास गये। चौधरी ने तुरन्त बता दिया, मवेशीखाने में है और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं।'

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबिल कवायद करते हैं। रैटन ! फाय फो ! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं नहीं चोरियाँ हो जायँ। मोहसिन ने प्रतिवाद किया—"यह कानिसटिबिल पहरा देते हैं ! तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हजरत, यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो ! जागते रहो !' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं। मेरे मामूँ एक थाने में कानिसटिबिल हैं। बीस रुपया महीना पाते हैं; लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्ला कसम। मैंने एक बार पूछा था कि मामूँ, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं ? हँसकर

कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लायें। हम तो इतना ही लेते है, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय।"

हामिद ने पूछा—"यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं ?"

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—"अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा ? पकड़नेवाले तो यह लोग खुद हैं; लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए मामूँ के घर में आग लग गयी। सारी लेई-पूंजी जल गयी। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोये, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाये तो बरतन-भाँड़े आये।"

हामिद—"एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं ?'

"कहाँ, पचास, कहाँ एक सौ। पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आये।"

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नजर आने लगीं। एक-से-एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थीं। जिस चीज की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया है। नीचे पक्का फर्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है।

और रोजेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गयी हैं। पक्की जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नहीं है। नये आनेवाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर है। इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गये। कितना सुन्दर संचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनन्तता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थीं, मानों भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोये हुए है।

(२)

नमाज खत्म हो गयी है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौने की दूकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके

पास हैं, अपने कोष का एक तिहाई जरा-सा चक्कर खाने के लिए वह नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दूकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिनी और साधू। वाह! कितने सुन्दर खिलौने हैं। अब बोला ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ी वाला, कन्धे पर बन्दूक रखे हुए। मालूम होता है, अभी कवायद किये चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है। मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है! उनके मुख पर, काला चुग़ा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किये चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने मँहगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर हो जाय। जरा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के!

मोहसिन कहता है—"मेरा भिश्ती रोज पानी दे जायगा; साँझ सवेरे।"

महमूद—"और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आयेगा, तो फौरन बन्दूक फैर कर देगा।"

नूरे—"और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।"

सम्मी—"और मेरी धोबिन रोज कपड़े धोयेगी।"

हामिद खिलौनों की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जायँ; लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि जरा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं; लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाब-जामुन, किसी ने सोहनहलवा। मजे से खा रहे हैं। हामिद बिरादरी से पृथक है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचायी आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—"हामिद, रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है!"

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह से रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—"अच्छा, अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम, ले जा।"

हामिद—"रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं?"

सम्मी—"तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या क्या लोगे?"

महमद—"हमसे गुलाबजामुन ले जाव हामिद। मोहसिन बदमाश है।"

हामिद—"मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।"

मोहसिन—"लेकिन दिल में कह रहे होगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?"

महमूद—"हम समझते हैं इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जायँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खायगा।"

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीजों की, कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दूकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है; अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी ! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जाएगी। खिलौने से क्या फायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौने को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जायँगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आये तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाजार आयें, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गये हैं। सबील पर सब-के-सब शर्बत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं ! इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खायँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप

ही जबान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुरायेंगे और मार खायँगे। किताब में झूठी बातें थोड़ी ही लिखी हैं। मेरी जबान क्यों खराब होगी। अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है! हजारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखायेंगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेगीं, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौने पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिजाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिजाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खायँ मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिजाज क्यों सहूँ। मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी-न-कभी आयेंगे। अम्माँ भी आयेंगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा, कितने खिलौने लोगे? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब-के-सब खूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें! मेरी बला से। उसने दूकानदार से पूछा—"यह चिमटा कितने का है?"

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—"वह तुम्हारे काम का नहीं है जी!"

"बिकाऊ है कि नहीं?"

"बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाये हैं?"

"तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है?"

"छै पैसे लगेंगे।"

हामिद का दिल बैठ गया।

"ठीक-ठीक बताओ!"

"ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।"

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा—"तीन पैसे लोगे?"

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दूकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रखा, मानों बन्दूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। जरा सुनें, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—"यह चिमटा क्यों लाया पगले! इसे क्या करेगा?"

हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटककर कहा—"जरा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की।"

महमूद बोला—"तो यह चिमटा कोई खिलौना है!"

हामिद—"खिलौना क्यों नहीं है? अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक हो गयी। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगायें, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।"

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—"मेरी खँजरी से बदलोगे? दो आने की है।"

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा—"मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। जरा-सा पानी लग जाय

तो खतम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।"

चिमटे ने भी सभी को मोहित कर लिया; लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आये हैं, नौ कब के बज गये, धूप तेज हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गये हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा मिला; लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चुग़े में मुँह छिपाकर जमीन पर लेट जायँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे-हिन्द लपक कर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

हामिद ने आखिरी जोर लगाकर कहा—"भिश्ती को एक डाँट बतायेगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।"

मोहसिन परास्त हो गया; पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—"अगर बचा पकड़ जायें तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के ही पैरों पड़ेंगे।"

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—"हमें पकड़ने कौन आयेगा ?"

नूरे ने अकड़ कर कहा—"यह सिपाही बन्दूकवाला।"

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—"यह बेचारे हम बहादुर रुस्तमे-हिन्द को पकड़ेंगे! अच्छा लाओ, अभी जरा कुश्ती हो जाय। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे। पकड़ेंगे क्या बेचारे!"

मोहसिन को एक नयी चोट सूझ गयी—"तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा।"

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा; लेकिन यह बात न हुई। हामिद ने तुरत जवाब दिया—"आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेडियों की तरह घर में घुस जायँगे। आग में कूदना वह काम है, जो यह रुस्तमे-हिन्द ही कर सकता है।"

महमूद ने एक जोर लगाया—"वकील साहब कुरसी-मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावरचीखाने में जमीन पर पड़ा रहेगा।"

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने। चिमटा बावरचीखाने में पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है।

हामिद को कोई पकड़ता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—"मेरा चिमटा बावरचीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।"

बात कुछ बनी नहीं। खासी गाली-गलौज थी; लेकिन कानून को पेट में डालने वाली बात छा गयी। ऐसी छा गयी कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गये, मानों कोई धेलचा कंकौआ किसी गण्डे

वाले कंकौए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकलनेवाली चीज है। उसको पेट के अन्दर डाल दिया जाना, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तमे-हिन्द है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारनेवालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किये पर कोई काम की चीज न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा ? टूट-फूट जायँगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों !

सन्धि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—"जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।"

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किये।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सब के हाथ में गया, और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आये। कितने खूबसूरत खिलौने हैं !

हामिद ने हारनेवालों के आँसू पोंछे—"मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।"

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सन्तोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन—"लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा ?"

महमूद—दुआ को लिए फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्माँ जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले ?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे-हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिये। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गये। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

(३)

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गयी। मेलेवाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मार-पीट हुई। दोनों खूब रोये। उनकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाये।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूँटियाँ गाड़ी गयीं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और

बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो! कानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जायगी कि नहीं। बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं, पंखे की हवा से, या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्ग-लोक से मृत्यु-लोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया! फिर बड़े ज़ोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूर पर डाल दी गयी।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया; लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आयी, उसमें कुछ लाल रंग के फटे पुराने चिथड़े बिछाये गये, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटें। नूरे ने यह टोकरी उठायी और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोनेवाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी चाहिए; महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिए जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जोड़ दी जाती है; लेकिन सिपाही को ज्यों ही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम-एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था; न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह

पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपान्तर चाहो, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

"यह चिमटा कहाँ था ?"

"मैंने मोल लिया है।"

"कै पैसे में ?"

"तीन पैसे दिये।"

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या, चिमटा ! सारे मेले में तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया ?

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा—"तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं; इसलिए मैंने इसे लिया।"

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है ! दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना जब्त इससे हुआ कैसे ! वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद् हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गयी। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी।

हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

राजा श्री राधिकारमणप्रसाद सिंह

[जन्म सन् १८९० ई०]

कानों में कँगना

श्री राधिकारमणप्रसाद सिंह बिहार के सूर्यपुरा (शाहाबाद) स्टेट के स्वामी हैं। शिक्षा एम० ए० तक मिली है। ये हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार हैं। 'कानों में कँगना' इनकी प्राथमिक रचना है जो १९१३ ई० में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी पर अपने ढंग की अनूठी कहानी होने से अब तक प्रसिद्ध है। ये 'हिन्दी के एक अत्यन्त भावुक और भाषा की शक्तियों पर अद्‌भुत अधिकार रखनेवाले पुराने लेखक हैं।' अपने 'रामरहीम' नामक उपन्यास की भूमिका में आपने लिखा है कि इसमें 'आजकल की टकसाली कला के पहलू में अपनी पुरानी धज भी कायम रखने की कोशिश की गई है।' यही बात इनकी अन्य रचनाओं के विषय में भी समझनी चाहिए। इनकी भाषा मुहाविरेदार, अलंकृत और सरस होती है। खेद है कि इधर हिन्दुस्तानी' के फेर में पड़कर ये उर्दू की ओर अधिक झुक गए। कहानियों के संग्रह 'कुसुमावली' 'सावनी समाँ' और 'गाँधी टोपी' आदि हैं और उपन्यास—'राम-रहीम' 'सूरदास' तथा 'पुरुष और नारी' आदि।

अवसर बीत जाने पर मनुष्य के हाथ में पछताना ही रह जाता है, इसलिए समय रहते दुष्कर्मों से निवृत्त होकर उचित मार्ग का अव-

लंबन करना चाहिए—यही इस कहानी की शिक्षा है। प्रस्तुत कहानी एक वेश्यागामी के पतन की व्यथा-कथा है। उसकी आँखें तब खुलीं जब उसका सर्वस्व स्वाहा हो गया। उसके मनमें पश्चात्ताप और ग्लानि की भावना तब जगी जब उसकी प्राणप्रिया पत्नी घुल-घुल कर चिर-निद्रा में सो गई। पापी के पाप ने उसके जीवन में ऐसा अंधकार कर दिया जिसमें आनन्द की एक भी किरण नहीं दिखाई पड़ती थी।

इस कहानी का आरम्भ वार्तालाप से हुआ है जिससे तुरन्त पाठक का कुतूहल जाग्रत हो जाता है। बीच-बीच में अवसर निकाल कर लेखक मन रमाने के लिए रसमय स्थल भी प्रस्तुत करता गया है। प्रकृति और रूप-चित्रण भी सुंदर हुए हैं। नायिका को निसर्गकन्या शकुंतला की भाँति आकर्षक बनाने की चेष्टा की गई है और जब वह पति के दुराचार की वेदी पर बलि हो जाती है तो पाठक दुःख-द्रवित हो जाता है। शैली इस कहानी की भाव प्रधान है।

कानों में कँगना

"किरण, तुम्हारे कानों में यह क्या है ?"

उसने कानों से चञ्चल लट को हटा कर कहा—"कँगना"

सचमुच दो कंगन कानों को घेर कर बैठे थे।

"अरे कानों में कँगना ?"

"हाँ—कहाँ तक पहनूँ ?"

किरण अभी भोली थी। दुनिया में जिसे भोली कहते हैं, वैसी भोली नहीं; उसे बन के फूलों का भोलापन समझो। नवीन उद्यान के फूलों की भङ्गी नहीं;—विविध खाद या रस से जिनकी जीविका है, निरन्तर काट-छाँट से जिनका सौन्दर्य है, जो दो घड़ी चंचल, चिकने बाल की भूषा हैं, जो दो घड़ी तुम्हारे फूलदान के गौरव हैं, वैसे; बन के फूल ऐसे नहीं। प्रकृति के हाथों से लगी है, मेघों की धारा से बढ़ी है, चटुल दृष्टि उसे पाती नहीं, जगत्‌वायु उसे छूती नहीं। यह सरल, सुन्दर, सौरभमय जीवन है। जब जीवित रहे तब चारों तरफ अपने प्राण-धन से हरे-भरे रखे; जब समय आया तब अपनी माँ के गोद में झर पड़े।

आकाश स्वच्छ था—नील, उदार, सुन्दर। पत्ते चुप थे, शान्त थे। सन्ध्या हो चली थी। सुनहली किरणें सुन्दर पर्वत की चूड़ा से देख रही थी। वह पतली किरण अपनी मृत्यु-शय्या से इस शून्य, निविड़ कानन में क्या ढूँढ़ रही थी—कौन कहे ? किसे एक टक देखती थी—कौन जाने ? अपनी लीला-भूमि को सस्नेह किरण चाहती थी ? या हमारे बाद वहाँ क्या हो रहा है,

इसे चाहती थी ? मैं क्या बता सकता हूँ ? उस भंगी में आकांक्षा अवश्य थी। मैं तो खड़ा-खड़ा उन बड़ी-बड़ी आँखों की किरण लूटता था। आकाशमें तारों को देखा या उन मनोहर आँखों को देखा, बात एक ही थी। हम दूर से तारों के सुन्दर, शून्य झिक-मिक को बार-बार देखते हैं, लेकिन वह निःस्पन्द, निश्चेष्ट ज्योति सचमुच भावहीन है, या आप-ही-आप अपनी अन्तर-लहरी में मस्त है, इसे जानना आसान नहीं। हमारी ऐसी आँखें कहाँ कि, उनके सहारे उस निगूढ़ अन्तर में डूब कर थाह लें ?

मैं रसाल की डाली थाम कर पास ही खड़ा था। वह बालों को हटाकर कँगना दिखाने की भंगी प्राणों में रह-रह कर उठती थी। जब माखन चुराने वाले ने गोपियों के सर के मटके को तोड़ कर उनके भीतरी किले को तोड़ डाला, या नूरजहाँ ने अंचल के कबूतर को उड़ाकर शाहंशाह के कठोर हृदय की धज्जियाँ उड़ा दीं; फिर नदी-किनारे वसन्त-बल्लभ रसाल-पल्लवों की छाया में बैठी, किसी अपरूप बालिका की सरल, स्निग्ध लीला एक मानव अन्तर पर क्यों न दौड़े ? किरण इन आँखों के सामने प्रति दिन आती ही जाती थी। कभी आम के टिकोरे से आँचल भर लाती, कभी मौलसरी के फूलों की माला बना लाती, किन्तु कभी भी ऐसी बाल-सुलभ लीला आँखों से हो कर हृदय तक नहीं उतरी। आज क्या था ? कौन शुभ या अशुभ क्षण था कि अचानक वह बनेली लता मन्दार माला से भी कहीं मनोरम दीख पड़ी ? कौन जानता था कि चाल से कुचाल जाने में, हाथों के कंगन भूल कर कानों में पहिनने में इतनी माधुरी थी, दो टके के कँगनों में ऐसी शक्ति है ! गोपियों को कभी स्वप्न में भी न झलका था कि बाँस की बाँसुरी में घूँघट खोलकर नचा देने की शक्ति है।

मैंने चटपट उसके कानों से कंगन उतार लिया, फिर धीरे-धीरे

उसकी उँगलियों पर चढ़ाने लगा। न जाने उस घड़ी कैसी खल-बली थी, मुँह से अचानक निकल आया—"किरण! आज की वह घटना मुझे मरते दम तक न भूलेगी। यह, भीतर तक पैठ गयी।"

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें और भी बड़ी हो गयीं। मुझे चोट-सी लगी। मैं तत्काल योगीश्वर की कुटी की ओर चल पड़ा। प्राण भी उसी समय नहीं चल पड़े, यही विस्मय था।

२

एक दिन था कि इस दुनिया में दुनिया से दूर रह कर भी लोग दूसरी दुनिया का सुख उठाते थे। हरिचन्दन के पल्लवों की छाया भूलोक पर कहाँ मिले, किन्तु किसी समय हमारे यहाँ भी ऐसे बन थे जिनके वृक्षों की छाया में दो घड़ी घाम निवारने के लिये स्वर्ग से देवता तक उतर आते थे। जिस पंचवटी के अनन्त यौवन को देखकर राम की आँखें भी खिल उठी थीं, यहाँ के निवासियों ने अमरतरु के सुन्दर फूलों की माला नहीं चाही, मन्दाकिनी के छींटों की शीतलता नहीं ढूँढ़ी। वृन्दावन का सानी कहीं वन भी था? कल्पवृक्ष की छाया में शान्ति अवश्य है, लेकिन कदम की छाँह की शान्ति कहाँ मिल सकती?

हमारी तुम्हारी आँखों ने कभी नन्दोत्सव की लीला नहीं देखी, लेकिन इसी भूतल पर एक दिन ऐसा उत्सव हो चुका है, जिसको देख-देख कर प्रकृति-रजनी छः महीने तक ठगी रही, शत-शत देवांगनाओं ने पारिजात के फूलों की वर्षा से नन्दन-कानन को उजाड़ डाला।

समय ने सब कुछ पलट दिया। अब ऐसे बन नहीं, जहाँ कृष्ण गोलोक से उतर कर दो घड़ी वंशी टेर दें। ऐसे कुटीर नहीं,

जिनके दर्शन से रामचन्द्र का अन्तर भी प्रसन्न हो, या ऐसे मुनीश नहीं, जो धर्म-धुरन्धर धर्मराज को भी धर्म में शिक्षा दें।

यदि एक-दो भूले-भटके हैं भी, तब अभी तक उन पर दुनिया का पर्दा नहीं उठा—जगन्माया की माया नहीं लगी। लेकिन कब तक बचे रहेंगे? लोक अपने यहाँ अलौकिक बातें कब तक होने देगा?

हृषीकेश के पास एक सुन्दर बन है, सुन्दर नहीं अपरूप सुन्दर है। वह प्रमद-वन के विलास-निकुंजों से सुन्दर नहीं, वरंच चित्रकूट या पंचवटी की महिमा से मण्डित है। वहाँ चाँदनी में बैठकर कनक-घुँघरू की इच्छा नहीं होती, पंच प्राणों में ऐसी आवेग-धारा उठती है, जो कभी अनन्त साधना के कूल पर पहुँचाती है, जो कभी जीव-जगत् के एक एक तत्त्व से दौड़ मिलाती है। गंगा की अनन्त गरिमा, बन की निविड़ योगनिद्रा नहीं देख पड़ेगी। कौन कहे वहाँ जाकर यह चंचल चित्त क्या चाहता है, गम्भीर अलौकिक आनन्द, या शान्त सुन्दर मरण।

इसी बन में एक कुटी बनाकर योगीश्वर रहते थे। योगीश्वर, योगीश्वर ही थे।

यद्यपि वह भूतल ही पर रहते थे, तथापि उन्हें इस लोक का जीव कहना यथार्थ नहीं था। उनकी चित्त-वृत्ति सरस्वती के श्रीचरणों में थी या ब्रह्म-लोक की अनन्त शान्ति में लिपटी थी, और वह बालिका स्वर्ग से एक किरण उतर कर घने जंगल में उजेला करती फिरती थी। वह लौकिक-माया-बद्ध जीवन नहीं था। उसे बन्धन-रहित, बाधाहीन नाचती किरणों की रेखा कहिये। मानो मत्त, चंचल मलय-वायु फूल-फूल पर, डाली-डाली पर डोलती-फिरती हो, या कोई मूर्तिमती अमर संगीत बे रोकटोक हवा पर या जल के तरंग-भंग पर नाच रही हो। मैं ही वहाँ इस

लोक का प्रतिनिधि था, मैं ही उन्हें उनकी अलौकिक स्थिति से इस जटिल मर्त्यराज में खैंच लाता था।

कोई साल भर से मैं योगीश्वर के यहाँ आता-जाता था। पिता की रुचि थी कि उनके यहाँ जाकर अपने धर्म के ग्रन्थ सब पढ़ डालो। योगीश्वर और बाबा लड़कपन के साथी थे इसलिए उनकी मुझ पर इतनी दया थी। किरण उनकी लड़की थी, उस कुटीर में एक वही दीपक थी। जिस दिन की घटना मैं लिख आया हूँ उसी दिन सवेरे मेरे अध्ययन की पूर्णाहुति थी, और मैं बाबा के कहने पर एक जोड़ा पीताम्बर, पाँच स्वर्ण-मुद्रा तथा किरण के लिये दो कनक-कङ्कन आचार्य्य के निकट ले गया था। योगीश्वर ने सब लौटा दिया केवल कंगन को किरण उठाकर ले गई। वे नहीं मालूम क्या समझकर चुप रह गये। समय का अद्भुत चक्र है! जिस दिन मैंने धर्म-ग्रन्थ से मुँह मोड़ा उसी दिन कामदेव के यहाँ जाकर उनकी किताब का पहला पन्ना उलटा।

दूसरे दिन मैं योगीश्वर से मिलने गया। वह किरण को पास बिठाकर न जाने क्या-क्या पढ़ा रहे थे। उनकी आँखें गम्भीर थीं। मुझको देखते ही वह उठ खड़े हुए और मेरे कन्धे पर हाथ रखकर गद्गद स्वर से बोले—"नरेन्द्र! अब मैं चला, किरण तुम्हारे हवाले है।" यह कहकर उन्होंने उसकी सुकोमल अँगुलियों को मेरे हाथ में रख दिया। लोचनों के कोनों पर दो बूँदें निकलकर झाँक पड़ीं। मैं सहम उठा। क्या उन पर सब बातें विदित थीं! क्या उनकी तीव्र दृष्टि मेरी अन्तर्लहरी तक डूब चुकी थी? वे ठहरे नही, चल दिये। मैं काँपता रह गया। किरण देखती रह गई।

वन-वायु भी अवाक् हो गई। हम दोनों चल पड़े। किरण मेरे कन्धे पर हाथ रक्खे थी। हठात् अन्तर से कोई कड़क कर कह उठा—"हाय नरेन्द्र, यह क्या? तुम इस वन-फूल को किस उद्यान

में ले चले ? इस बन्धन-विहीन स्वर्गीय जीवन को किस लोक-जाल से बाँधने ले चले ?

३

कंकड़ी जल में जाकर कोई स्थायी विवर नहीं फोड़ सकती। क्षण भर जल का समतल भले ही उलट-पुलट हो लेकिन इधर उधर से जल-तरंग दौड़कर किसी छिद्र का चिन्ह-मात्र भी नहीं रहने देते। जगत् की भी यही चाल है। यदि स्वर्ग से देवेन्द्र भी भागकर इस लोक-चला-चल से खड़े हों फिर संसार देखते-ही देखते उन्हें अपना बना लेगा। इस काली कोठरी में आकर इसकी कालिमा से बचा रहे, ऐसी शक्ति अब आकाश-कुसुम ही समझो। दो दिन में राम 'हाय जानकी' कहकर वन-वन भटकते फिरे। दो क्षण में वही विश्वामित्र को स्वर्ग से घसीट लाया।

किरण की यही अवस्था हुई। कहाँ प्रकृति की निर्मुक्त गोद कहाँ जगत् का जटिल बन्धन-पाश ?—कहाँ-से-कहाँ आ पड़ी। वह अलौकिक भोलापन, वह निसर्ग उच्चावास हाथों-हाथ लुट गये। ।उस वन की मायावी मनोहारिता में परिणत हुई। अब आँखें उठाकर आकाशसे नीरव बातचीत करने का अवसर कहाँ से मिले ? मलय-वायु से मिलकर मलयाचल के फूलों की पूछताछ क्योंकर हो ?

जब किरण नये साँचे में ढलकर उतरी, उसे पहचानना भी कठिन था। अब वह लाल, पीली, हरी साड़ी पहिनकर सर पर सिन्दूर-लेखा सजती और हाथों में कंगन, कानों में बाली, गले में कंठी तथा कमर में करधनी, दिन-दिन उसके चित्त को नचाये मारती थीं। जब कभी वह सज-धजकर चाँदनी में कोठे पर जाती और वसन्त-वायु उसके आँचल से मोतियों की लपट लाकर मेरे बरामदे में भर देती, उस समय किसी मतवाली

माधुरी या तीव्र मदिरा के नशे से मेरा मस्तिष्क घूम जाता और मैं चटपट अपना प्रेम-चीत्कार फूलदार रंगीन चिट्ठी में भरकर जूही के हाथ ऊपर भिजवाता, या बाजार से दौड़कर कटकी गहने या विलायती चूड़ी खरीद लाता। लेकिन जो हो, अब भी कभी-कभी उसके प्रफुल्ल बदन पर उस आलोक की छटा पूर्व जन्म की सुख-स्मृतिवत् चली आती थी और आँखें उसी जीवन्त सुन्दर झिकमिक का नाच दिखाती थीं। जब अन्तर प्रसन्न था तब बाहरी चेष्टा पर प्रतिबिम्ब क्यों न पड़े।

यों ही साल-दो-साल मुरादाबाद में कट गए। एक दिन मोहन के यहाँ नाच देखने गया। वहीं किन्नरी से आँख मिली; मिली क्या, लीन हो गई। नवीन यौवन, कोकिल-कण्ठ, चतुर चंचल चेष्टा तथा मायावी चकमक—अब चित्त को चलाने के लिए और क्या चाहिए। किन्नरी सचमुच किन्नरी ही थी। नाचने वाली नहीं नचाने वाली थी। पहली बार देख कर उसे इस लोक की सुन्दरी समझना दुस्तर था—एक लपट-सी लगती—कोई नशा-सा चढ़ जाता। यारों ने मुझे और भी चढ़ा दिया। आँखें मिलती-मिलती मिल गईं। हृदय को भी साथ-साथ घसीट ले गईं।

फिर क्या था—इतने दिनों की धर्म-शिक्षा शत वत्सर की पूज्या लक्ष्मी, बाप दादों की कुल-प्रतिष्ठा, पत्नी से पवित्र प्रेम—एक-एक करके ये सब उस प्रदीप्त वासना-कुण्ड में भस्म होने लगे। अग्नि और भी बढ़ती गई। किन्नरी की चिकनी दृष्टि, चिकनी बातें घी बरसाती रहीं। घर-बार सब जल उठा। मैं भी निरन्तर जलने लगा; लेकिन ज्यों-ज्यों जलता गया, जलने की इच्छा जलाती रही।

पाँच महीने कट गए। नशा उतरा नहीं। बनारसी साड़ी, पारसी जैकेट, मोती का हार, कटकी काम—सब कुछ लाकर

उस मायाकरी के अलक रञ्जित चरणों पर रक्खा। और किरण ? हेमन्त मालती बनी थी; जिसके घर पर फूल नहीं—एक पल्लव नहीं।

घर की वधू क्या करती ? जो अनन्त सूत्र से बँधा था, वही हाथों-हाथ पराये के हाथ बिक गया। किन्तु ये तो दोनों चकमकी खिलौने थे, इन्हें शरीर बदलते क्या देर लगे ? दिन-भर बहाना की माला गूँथ-गूँथकर किरण के गले में और रात्रि को मोती की माला उस नाचने वाली या नचानेवाली के गले में सशंक, निर्लज्ज डाल देता। यही मेरा कर्तव्य, धर्म, नियम हो उठा। एक दिन सारी बातें खुल गईं। किरण, पछाड़ खा कर जमीन पर जा पड़ी। उसकी आँखों में आँसू न थे, मेरी आँखों में दया न थी।

४

बरसात की रात थी। रिमझिम रिमझिम बूँदों की झड़ी लगी हुई थी। चाँदनी मेघों से आँख-मुदौअल खेल रही थी। बिजली लोल कपाट से बार-बार झाँकती थी। वह किसे चंचल देखती थी, और बादल किस मसोस से रह-रहकर चिल्लाते थे, इन्हें सोचने का मुझे अवसर ही न था। मैं तो किन्नरी के दरवाजे से हताश लौटा था, आँखों के ऊपर न चाँदनी थी, न बदली। त्रिशंकु ने स्वर्ग जाते-जाते बीच ही से टँगकर किस दुःख को उठाया; और मैं तो अपने स्वर्ग के दरवाजे पर सर रखकर निराश लौटा था, मेरी वेदना क्यों न बड़ी हो ? हाय ! एक अँगूठी भी रहती तो उसे दिखाकर उसके चरणों से चन्दन चाटता।

घर पर आते ही जूही को पुकार उठा—"जूही ! जूही !! किरण के पास कुछ भी बचा-बचाया हो, तो फौरन जाकर माँग

लाओ।" ऊपर से कोई आवाज नहीं आई, केवल सर के ऊपर से एक काला बादल, कालान्त चीत्कार से चिल्ला उठा। मेरा मस्तिष्क घूम गया। मैं तत्क्षण कोठे पर दौड़ा।

बस सन्दूक-झाँपे, जो कुछ मिला सब तोड़ डाला; लेकिन मिला कुछ भी नहीं। आलमारी में केवल मकड़े का जाला था। शृंगार-बक्स में एक छिपकली बैठी थी। उसी दम किरण पर झपटा।

पास जाते ही सहम गया। वह एक तकिये के सहारे निःसहाय, निस्पन्द लेटी हुई थी। चाँदनी ने, खिड़की से आकर उसे गोद में ले रक्खा था। और वायु उस शान्त शरीर पर जल भिगोया पखा झल रही थी। मुख पर एक अपरूप छटा थी। कौन कहे, कहीं जीवन की शेष रश्मि क्षण-भर वहीं अटकी हो। आँखों में एक नवीन ज्योति थी। शायद प्राण शरीर से निकल कर किसी आसरे से वहीं बैठ रहा था। मैं फिर पुकार उठा—"किरण, तुम्हारे पास कोई और गहना भी बच गया है?"

"हाँ"—क्षीण कण्ठ की काकली थी।

"कहाँ है—अभी देखने दो।"

उसने धीरे-से घूँघट सरकाकर कहा—"वही कानों का कँगना।"

सर तकिये से ढल पड़ा। आँखें भी छिप गईं। वह जीवान्त रेखा कहाँ उड़ गई। क्या इतने ही के लिए अब तक ठहरी थी?

मेरी आँखें मुख पर जा पड़ीं—वही कंगन थे, वैसे ही कानों को घेरकर बैठे थे। मेरी स्मृति तड़िद्वेग से चमक उठी। दुष्यन्त ने अँगूठी को पहचान लिया था—भूली शकुन्तला, तत्क्षण याद

आ गयी थी। लेकिन दुष्यन्त सौभाग्यशाली थे, अपनी प्राण प्रिया को आकाश-पाताल छान कर ढूँढ़ निकाला। मेरी किरण तो इस भूतल पर नहीं थी, कि किसी तरह प्राण देकर भी पता पाता। परलोक से ढूँढ़ निकालूँ, ऐसी शक्ति इस दीन-हीन मानव में कहाँ ?

सारी बातें सूझ गईं। चढ़ा नशा उतर पड़ा, आँखो-पर-की पट्टी खुल गई; लेकिन हाय ! खुली भी तो उसी समय जब जीवन में केवल अंधकार ही अंधकार रह गया।

श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क'

[जन्म—सन् १९१० ई०]

डाची

अश्क जी का जन्म जालंधर (पंजाब) में हुआ। बी०ए० पास करने के बाद एक स्कूल में अध्यापक हो गए। कुछ समय बाद लाहौर आकर कई उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के संपादन-विभाग में कार्य किया। कुछ दिनों तक रेडियो में भी काम किया। स्वास्थ्य ठीक न रहने से आपको नौकरी छोड़नी पडी। अब इलाहाबाद में रहकर स्वतन्त्र रूप से लेखन-कार्य करते हैं। पहले उर्दू में लिखते थे। १९३३ से हिंदी में लिखने लगे। आधुनिक कथा-साहित्य में आपका ऊँचा स्थान है। मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के जीवन की कटुता को अपनी रचनाओं में व्यक्त करने में आप सिद्ध हैं। उपन्यास-कहानी के अतिरिक्त इन्होंने एकांकी नाटक और कवितायें भी लिखी हैं। 'डाची', 'कोंपल' और 'काले साहब' आदि कहानी-संग्रह हैं और 'सितारों के खेल' तथा 'गिरती दीवारें'–ये दो उपन्यास।

'डाची' एक विपन्न और साधन-हीन पिता की करुण-कथा है। एक गरीब मजदूर अपनी मातृ-विहीन बच्ची का अरमान पूरा करने के लिए जी-तोड़ परिश्रम करके और पेट काटकर रुपये इकट्ठा करता है और मेले में जाकर एक साँडनी खरीदता है। परन्तु घर लौटते समय गाँव का प्रभावशाली जमींदार बीच में ही साँडनी कुछ-उधार-कुछ-

नकद पर जबर्दस्ती 'मोल' ले लेता है। इतने दिनों की उसकी लालसा इस प्रकार पूरी होते-होते रह गई। एक हृदयहीन व्यक्ति की स्वार्थपरताने उसकी सुखद कल्पना को निर्दयतापूर्वक छिन्न-भिन्न कर दिया। सहानुभूतिपूर्वक दूसरों की इच्छा-आकांक्षा का विचार न रखने से मनुष्य स्वार्थवश दूसरे व्यक्तियों को कभी-कभी मर्मान्तक व्यथा पहुँचाता है और उसका यह कार्य कितना अमानुषिक है यह इस रचना में लेखक ने बहुत अच्छे ढंग से व्यंजित किया है।

इस कहानी में कथानक थोड़ा है, घटनाएँ अधिक नहीं हैं पर पात्रों की मनःस्थिति एवं जीवन-परिस्थिति, और स्थानीय विशेषताओं तथा दृश्यों का सूक्ष्म विवरण देकर लेखक ने बड़ी खूबी से अभिप्रेत प्रभाव उत्पन्न किया है। संवाद थोड़े हैं पर उपयुक्त वातावरण की सृष्टि में बहुत सहायक। कहानी का अंत अत्यन्त मर्मस्पर्शी और व्यंजक है।

डाची

काट[1] 'पी सिकन्दर' के मुसलमान जाट बाक़र को अपने माल की ओर लालच भरी निगाहों से ताकते देखकर चौधरी नन्दू वृक्ष की छाँह में बैठे-बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज में ललकार उठा, "रे-रे अठे के करे है ?"[2] और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह, जो वृक्ष के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गयी और बटन टूटे होने के कारण, मोटी खादी के कुर्ते से उसका विशाल वक्षस्थल और उसकी बलिष्ठ भुजाएँ दृष्टिगोचर हो उठीं।

बाक़र तनिक समीप आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरई मूँछों के ऊपर गढ़ों में धँसी हुई दो आँखों में निमिष-मात्र के लिए चमक पैदा हुई और ज़रा मुस्कराकर उसने कहा, "डाची[3] देख रहा था चौधरी, कैसी खूबसूरत और जवान है, देखकर आँखों की भूख मिटती है ?"

अपने माल की प्रशंसा सुनकर चौधरी नन्दू का तनाव कुछ कम हुआ, प्रसन्न होकर बोला "किसी साँड[4] ?"

"वह परली तरफ से चौथी।" बाक़र ने संकेत करते हुए कहा।

ओकाँद[5] के एक घने पेड़ की छाया में आठ-दस ऊँट बँधे थे उन्हीं में वह जवान साँड़नी अपनी लम्बी सुन्दर और सुडौल गर्दन

१—दस बीस सिरकियों के खेमों का छोटा-सा गाँव। २—अरे तू यहाँ क्या कर रहा है। ३—साँड़नी। ४—कौन-सी डाची। ५—एक वृक्ष-विशेष।

बढ़ाये घने पत्तों में मुँह मार रही थी। माल-मण्डी में, दूर जहाँ तक नजर जाती थी, बड़े-बड़े ऊँचे ऊँटों, सुन्दर साँडनियों, काली मोटी बेडौल भैंसों, सुन्दर नगौरी सींगों वाले बैलों और गायों के सिवा कुछ दिखाई न देता था। गधे भी थे, पर न होने के बराबर। अधिकांश तो ऊँट ही थे। बहावल नगर के मरुस्थल में होनेवाली माल-मण्डी में उनका आधिक्य था भी स्वाभाविक। ऊँट रेगिस्तान का जानवर है। इस रेतीले इलाके में आमद-रफ्त, खेती-बाड़ी और बारबरदारी का काम उसी से होता है। पुराने समय में जब गायें दस-दस और बैल पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में मिल जाते थे, तब अच्छा ऊँट पचास से कम में हाथ न आता था और अब भी जब इस इलाके में नहर आ गयी है, पानी की इतनी किल्लत नहीं रही, ऊँट का महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। सवारी के ऊँट दो-दो सौ से तीन-तीन सौ तक पाए जाते हैं और बाही तथा बारबरदारी के भी अस्सी-सौ से कम में हाथ नहीं आते।

तनिक और आगे बढ़कर बाकर ने कहा "सच कहता हूँ चौधरी, इस जैसी सुन्दर साँड़नी मुझे सारी मण्डी में दिखायी नहीं दी।"

हर्ष से नन्दू का सीना दुगना हो गया, बोला, "आ एक ही के, इह तो सगली फूटरी हैं। हूँ तो इन्हें चारा फलूँसी निरिया करूँ।"[१]

धीरे से बाकर ने पूछा, "बेचोगे इसे?"

नन्दू ने कहा, "इठई बेचने लई तो लाया हूँ।'

१—यह एक ही क्या यहाँ तो सब ही सुन्दर हैं, मैं इन्हें चारा और फलूँसी (जवारा और मोट) देता हूँ।

"तो फिर बताओ, कितने को दोगे ?"—बाकर ने पूछा।

नन्दू ने नख से शिख तक बाकर पर दृष्टि डाली और हँसते हुए बोला, "तन्ने चाही जै का तैरे धनी वेई मोल लेसी[1] ।"

"मुझे चाहिये" बाकर ने दृढ़ता से कहा।

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मजदूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर साँड़नी मोल ले ! बोला—"तू की लेसी ?"

बाकर की जेब में पड़े हुए डेढ़-सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने के लिए व्यग्र हो उठे। तनिक जोश के साथ उसने कहा, "तुम्हें इससे क्या, कोई ले, तुम्हें तो अपनी कीमत से गरज है, तुम मोल बताओ ?"

नन्दू ने उसके जीर्ण-शीर्ण कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए टालने के विचार से कहा, "जा जा, तू इशी-विशी ले आयी, इंगो मोल तो आठ बीसी सूँ घाट के नहीं।"[2]

एक निमिष के लिए बाकर के थके हुए, व्यथित चेहरे पर आह्लाद की रेखा झलक उठी ! उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मोल न बता दे, जो उसकी बिसात से ही बाहर हो; पर जब अपनी जबान से ही उसने १६०) बताये, तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। १५०) तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी न माना, तो दस रुपए वह उधार कर लेगा। भाव-ताव तो उसे करना आता न था। झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के आगे फेंक दिये। बोला,—

१—तुझे चाहिए या तू अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है ?

२—जा, जा तू कोई ऐसी-वैसी साँड़ खरीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं है।

"गिन लो, इनसे अधिक मेरे पास नहीं, अब आगे तुम्हारी मर्जी।"

नन्दू ने अन्यमनस्कता से नोट गिनने आरम्भ कर दिये। पर गिनती खत्म करते ही उसकी आँखें चमक उठीं। उसने बाकर को टालने के वास्ते ही मूल्य १६०) बता दिया था, नहीं तो मण्डी में अच्छी-से-अच्छी डाची डेढ़-सौ में मिल जाती और इसके तो १४०) पाने की भी उसने स्वप्न तक में कल्पना न की थी। पर शीघ्र ही मन के भावों को छिपाकर और जैसे बाकर पर अहसान का बोझ लादते हुए नन्दू बोला, "साँड़ तो मेरी दो-सो की है, पण जा सागी मोल मियाँ तन्ने दस छाँड़िया।"[1] और यह कहते-कहते उठकर उसने साँड़नी की रस्सी बाकर के हाथ में दे दी।

क्षणभर के लिए उस कठोर व्यक्ति का जी भर आया! यह साँड़नी उसके यहाँ ही पैदा हुई और पली थी। आज पाल-पोसकर उसे दूसरे के हाथ में सौंपते हुए उसके मन की कुछ ऐसी दशा हुई, जो लड़की को ससुराल भेजते समय पिता की होती है! जरा काँपती आवाज में, स्वर को तनिक नर्म करते हुए, उसने कहा, "आ साँड़ सोरी रहेड़ी है। तूँ इन्हें रेहड़ न गेर दई।"[2] ऐसे ही जैसे ससुर दामाद से कह रहा हो—'मेरी लड़की लाड़ों पली है, देखना इसे कष्ट न होने देना।'

आह्लाद के पंख पर उड़ते हुए बाकर ने कहा, "तुम जरा भी चिन्ता न करो, जान देकर पालूँगा।"

१—साँडनी तो मेरी २००) की है; पर जा सारी कीमत में से तुम्हें दस रुपये छोड़ दिये।

२—यह साँड़नी अच्छी तरह रखी गई है, तू इसे यों ही मिट्टी में न रोल लेना।

नन्दू ने नोट अण्टी में सँभालते हुए, जैसे सूखे हुए गले को जरा तर करने के लिए, घड़े में से मिट्टी का प्याला भरा—मंडी में चारों ओर धूल उड़ रही थी। शहरों की माल-मंडियों में भी—जहाँ बीसियों अस्थायी नल लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती, फिर रेगिस्तान की मंडी पर तो धूल ही का साम्राज्य था। गन्नेवालों की गड़ेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचेवाले के दही-बड़े पर सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। घड़े का पानी टाँचियों द्वारा नहर से लाया गया था, पर यहाँ आते-आते वह कीचड़-जैसा गँदला हो गया था। नन्दू का ख्याल था कि निथरने पर पियेगा, पर गला कुछ सूख रहा था। एक ही घूँट में प्याले को खत्म करके नन्दू ने बाकर से भी पानी पीने के लिए कहा। बाक़र आया था, तो उसे गजब की प्यास लगी हुई थी, पर उसे अब पानी पीने की फुर्सत कहाँ ? वह रात होने के पहले-पहले गाँव पहुँचना चाहता था। डाची की रस्सी पकड़े हुए वह धूल को चीरता हुआ सा चल पड़ा।

× × ×

बाकर के दिल में एक सुन्दर और युवा डाची खरीदने की लालसा थी। जाति से वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे, किन्तु उसके पिता ने अपना पैत्रिक काम छोड़कर मजदूरी करना ही शुरू कर दिया था। उसके बाद बाक़र भी इसी से अपना और अपने छोटे कुटुम्ब का पेट पालता आ रहा था। वह काम अधिक करता हो यह बात न थी। काम से उसने सदैव जी चुराया था। चुराता भी क्यों न, जब उसकी पत्नी उससे दुगुना काम करके उसके भार को बँटाने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी। कुटुम्ब बड़ा न था—एक

वह,—एक उसकी पत्नी और एक नन्हीं-सी बच्ची। फिर किस लिए वह जी हलकान करता ? पर क्रूर और बेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व समझने पर बाधित कर दिया। उसने बता दिया कि जीवन में सुख ही नहीं, आराम ही नहीं, दुःख भी है, परिश्रम भी है।

पाँच वर्ष हुए उसकी वही आराम देनेवाली प्यारी पत्नी सुन्दर गुड़िया-सी लड़की को छोड़कर परलोक सिधार गई थी। मरते समय, अपनी सारी करुणा को अपनी फीकी और श्रीहीन आँखों में बटोर कर उसने बाक़र से कहा था, "मेरी रजिया अब तुम्हारे हवाले है, इसे कष्ट न होने देना। इसी एक वाक्य ने बाक़र के समस्त जीवन के रुख को पलट दिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही वह अपनी विधवा बहिन को उसके गाँव से ले आया था और अपने आलस तथा प्रमाद को छोड़कर अपनी मृत पत्नी की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करने में संलग्न हो गया था।

वह दिन-रात काम करता था ताकि अपनी मृत पत्नी की उस धरोहर को अपनी उस नन्हीं सी गुड़िया को, भाँति-भाँति की चीजें लाकर प्रसन्न कर सके। जब भी कभी वह मण्डी को आता तो नन्हीं सी रजिया उसकी टाँगों से लिपट जाती और अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसके गर्द से अटे हुए चेहरे पर जमाकर पूछती, "अब्बा मेरे लिए क्या लाए हो ?" तो वह उसे अपनी गोद में ले लेता और मिठाई और कभी खिलौनों से उसकी झोली भर देता ! तब रजिया उसकी गोद से उतर जाती और अपनी सहेलियों को अपने खिलौने या मिठाई दिखाने के लिए भाग जाती। यही गुड़िया जब आठ बरस की हुई, तो एक दिन मचल कर अपने अब्बा से कहने लगी, "अब्बा हम तो डाची लेंगे; अब्बा हमें डाची ले दो।" भोली-भाली निरीह बालिका ! उसे

क्या मालूम कि वह एक विपन्न साधन-हीन मजदूर की बेटी है, जिसके लिए डाची खरीदना तो दूर रहा, डाची की कल्पना करना भी पाप है। रूखी हँसी हँसकर बाक़र ने उसे अपनी गोद में ले लिया और बोला, "रज्जो, तू तो खुद डाची है।" पर रजिया न मानी। उस दिन मशीर-माल अपनी साँड़नीपर चढ़कर अपनी छोटी लड़की को आगे बैठाए दो-चार मजदूर लेने के लिए अपनी इसी काट में आए थे। तभी रजिया के नन्हें से मन में डाची पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी, और उस दिन से बाक़र की रही-सही अकर्मण्यता भी दूर हो गई थी।

उसने रजिया को टाल तो दिया था, पर मन ही मन उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह अवश्य रजिया के लिए एक सुन्दर-सी डाची मोल लेगा। उसी इलाके में जहाँ उसकी आय की औसत साल भर में तीन आने रोजाना भी न होती थी, अब आठ-दस आने हो गयी। दूर-दूर के गाँवों में अब वह मजदूरी करता। कटाई के दिनों में वह दिन-रात काम करता—फसल काटता; दाने निकालता; खलिहानों में अनाज भरता; नीरा डाल कर भूसे के कुप बनाता। बिजाई के दिनों में हल चलाता; क्यारियाँ बनाता; बिजाई करता। उन दिनों उसे पाँच आने से लेकर आठ आने रोजाना तक मजदूरी मिल जाती। जब कोई काम न होता तो प्रातः उठकर, आठ कोस की मंजिल मार कर मंडी जा पहुँचता और आठ-दस आने की मजदूरी करके ही घर लौटता। उन दिनों में वह रोज छः आने बचाता आ रहा था। इस नियम में उसने किसी तरह की ढील न होने दी थी। उसे जैसे उन्माद-सा हो गया था। बहन कहती, "बाक़र, अब तो तुम बिल्कुल ही बदल गए हो, पहले तो तुमने कभी ऐसे जी तोड़ कर मेहनत न की थी।"

बाक़र हँसता और कहता, "तुम चाहती हो, मैं आयु भर निठ्ठला रहूँ ?"

बहन कहती, "निकम्मा बैठने को तो मैं नहीं कहती, पर सेहत गँवाकर रुपया जमा करने की सलाह भी मैं नहीं दे सकती ।"

ऐसे अवसर पर सदैव बाक़र के सामने उसकी मृत-पत्नी का चित्र खिच जाता, उसकी अन्तिम अभिलाषा उसके कानों में गूँज जाती। वह आँगन में खेलती हुई रजिया पर एक स्नेह-दृष्टि डालता और विषाद से मुस्करा कर फिर अपने काम में लग जाता। और आज—डेढ़ वर्ष के कड़े परिश्रम के बाद, वह अपनी चिर-संचित अभिलाषा पूरी कर सका था।

उसके एक हाथ में साँड़नी की रस्सी थी और नहर के किनारे किनारे वह चला जा रहा था।

साँझ की वेला थी। पश्चिम की ओर डूबते हुए सूरज की किरणें पृथ्वी को सोने का अन्तिम दान कर रही थीं। वायु में ठंडक आ गई थी, और कहीं दूर खेतों में टिटिहरी टीहूँ-टीहूँ करती उड़ रही थी। बाक़र के मन में अतीत की सब बातें एक-एक करके आ रही थीं। इधर-उधर कभी-कभी कोई किसान अपने ऊँट पर सवार फुदकता हुआ निकल जाता था और कभी-कभी खेतों से वापस आने वाले किसानों के लड़के बैलगाड़ी में रखे हुए घास-पट्ठे के गट्ठों पर बैठे, बैलों को पुचकारते, किसी गीत का एकाध बन्द गाते, या बैलगाड़ी के पीछे बँधे हुए चुपचाप चले आने वाले ऊँटों की थुथनियों से खेलते चले जाते थे।

बाक़र ने जैसे स्वप्न से जागते हुए, पश्चिम की ओर अस्त होते हुए अंशुमाली की ओर देखा फिर सामने की ओर शून्य में नजर दौड़ायी—उसका गाँव अभी बड़ी दूर था। पीछे को ओर

हर्ष से देखकर और मौन रूप से चली आने वाली साँड़नी को प्यार से पुचकार कर वह और भी तेजी से चलने लगा—कहीं उसके पहुँचने से पहले रजिया सो न जाये इसी विचार से।

× × ×

मशीर-माल की काट नजर आने लगी। यहाँ से उसका गाँव समीप ही था। यही कोई दो कोस। बाक़र की चाल धीमी हो गयी और इसके साथ ही कल्पना की देवी अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से उसके मस्तिष्क के चित्रपट पर तरह-तरह की तस्वीरें बनाने लगीं। बाकर ने देखा, उसके घर पहुँचते ही नन्हीं रजिया आह्लाद से नाचकर उसकी टाँगों से लिपट गई है और फिर डाची को देखकर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य और उल्लास से भर गई हैं। फिर उसने देखा, वह रजिया को आगे बैठाये सरकारी खाले (नहर) के किनारे-किनारे डाची पर भागा जा रहा है। शाम का वक्त है, ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है और कभी-कभी कोई पहाड़ी कौआ अपने बड़े-बड़े पंख फैलाए और अपनी मोटी आवाज से दो-एक बार काँव-काँव करके ऊपर से उड़ता चला जाता है। रजिया की खुशी का वारापार नहीं। वह जैसे हवाई-जहाज में उड़ी जा रही है; फिर उसके सामने आया कि वह रजिया को लिये बहावल नगर की मंडी में खड़ा है। नन्हीं रजिया मानों भौंचक्की-सी है। हैरान और आश्चर्यान्वित-सी चारों ओर अनाज के इन बड़े-बड़े ढेरों; अनगिनत छकड़ों और हैरानकर देनेवाली चीजों को देख रही है। बाकर साह्लाद उसे सबकी कैफियत दे रहा है। एक दुकान पर ग्रामोफोन बजने लगता है। बाक़र रजिया को वहाँ ले जाता है। लकड़ी के इस डिब्बे से किस तरह गाना निकल रहा है, कौन इसमें छिपा गा रहा है—यह सब बातें रजिया की समझ में

नहीं आतीं, और यह सब जानने के लिए, उसके मन में जो कुतूहल और जिज्ञासा है. वह उसकी आँखों में टपकी पड़ती।

वह अपनी कल्पना में मस्त काट के पास से गुजरा जा रहा था कि सहसा कुछ विचार आ जाने से रुका और काट में दाखिल हुआ।

मशीर-माल की काट भी कोई बड़ा गाँव न था। इधर के सब गाँव ऐसे ही हैं। ज्यादा हुए तो तीस छप्पर हो गए। कड़ियों की छत का या पक्की ईंटों का मकान अभी इस इलाके में नहीं। खुद बाकर की काट में पन्द्रह घर थे, घर क्या झुँगियाँ थीं। सिरकियों के खेमे—जिन्हें झोपड़ियों का नाम भी नहीं दिया जा सकता था। मशीर-माल की काट भी ऐसे ही बीस-पच्चीस झुँगियों की बस्ती थी, केवल मशीर-माल का निवास-स्थान कच्ची ईंटों से बना था; पर छत उसपर भी छप्पर की ही थी। बाकर नानक बढ़ई की झुंगी के सामने रुका। मंडी जाने से पहले वह यहाँ डाची का गदरा (काठी) बनने के लिए दे गया था। उसे ख्याल आया कि यदि रजिया ने साँड़नी पर चढ़ने की ज़िद की, तो वह उसे कैसे टाल सकेगा। इसी विचार से वह पीछे लौट आया था। उसने नानक को दो-एक आवाजें दीं। अन्दर से शायद उसकी पत्नी ने उत्तर दिया—"घर में नहीं हैं, मंडी गए हैं।"

बाकर का दिल बैठ गया। वह क्या करे, यह न सोच सका। नानक यदि मंडी गया है, तो गदरा क्या खाक बनाकर गया होगा। फिर उसने सोचा, शायद बनाकर रख गया हो। इससे कुछ सांत्वना मिली। उसने फिर पूछा—"मैं साँड़नी का पलान बनाने के लिए दे गया था, वह बना या नहीं ?"

जवाब मिला—"हमें मालूम नहीं।"

बाकर का आधा उल्लास जाता रहा। बिना गदरे के वह डाची को क्या लेकर जाय। नानक होता तो उसका गदरा चाहे न बना सही कोई दूसरा ही उससे माँग कर ले जाता। यह विचार आते ही उसने सोचा—'चलो मशीर-माल से माँग लें। उनके तो इतने ऊँट रहते हैं, कोई न कोई पुराना पलान होगा ही। अभी उसी से काम चला लेंगे। तब तक नानक नया गदरा तैयार कर देगा।' यह सोचकर वह मशीर-माल के घर की ओर चल पड़ा।

अपनी मुलाजमत के दिनों में मशीर-माल साहब ने पर्याप्त धनोपार्जन किया था। जब इधर नहर निकली, तो उन्होंने अपने पद और प्रभाव के बल पर रियासत में कौड़ियों के मोल कई मुरब्बे जमीन मोल ले ली थी। अब नौकरी से अवकाश ग्रहण कर यहीं आ रहे थे। राहक रखे हुए थे, आय खूब थी और मजे में जीवन व्यतीत हो रहा था। अपनी चौपाल में एक तख्त-पोश पर बैठे वे हुक्का पी रहे थे—सिर पर श्वेत साफा, गले में श्वेत कमीज, उसपर श्वेत जाकेट और कमर में दूध जैसे रंग का तहमद। गर्द में अटे हुए बाकर को साँड़नी की रस्सी पकड़े आते देखकर उन्होंने पूछा—"कहो बाकर, किधर से आ रहे हो?"

बाकर ने झुककर सलाम करते हुए कहा—"मंडी से आ रहा हूँ, मालिक।"

"यह डाची किसकी है?"

"मेरी है मालिक, अभी मंडी से ला रहा हूँ?"

"कितने को लाए हो?"

बाकर ने चाहा, कह दें आठ-बीसी को लाया हूँ। उसके ख्याल में ऐसी सुन्दर डाची २०० में भी सस्ती थी, पर मन न

माना, बोला—"हजूर, माँगता तो १६० था; पर सात बीसी में ही में ले आया हूँ।"

मशीर-माल ने एक नजर डाची पर डाली। वे स्वयं अर्से से एक सुन्दर डाची अपनी सवारी के लिए लेना चाहते थे। उनके डाची तो थी, पर पिछले वर्ष उसे सीमक[1] हो गया था और यद्यपि नील इत्यादि देने से उसका रोग दूर हो गया था, पर उसकी चाल में वह मस्ती, वह लचक न रही थी। यह डाची उनकी नजरों में जँच गई।—क्या सुन्दर और सुडौल अंग हैं, क्या सफेदी—मायल भूरा-भूरा रंग है—क्या लचलचाती लम्बी गर्दन है। बोले—"चलो हमसे आठ-बीसी ले लो, हमें एक डाची की जरूरत है, दस तुम्हारी मेहनत के रहे।"

बाकर ने फीकी हँसी के साथ कहा—"हुजूर अभी तो मेरा चाव भी पूरा नहीं हुआ।"

मशीर-माल उठकर डाची के गर्दनपर हाथ फेरने लगे थे—वाह! क्या असील जानवर है। प्रकट बोले—चलो, पाँच और ले लेना।

और उन्होंने आवाज दी,—"नूरे, अरे ओ नूरे।"

नौकर भैसों के लिए पट्ठे कतर रहा था, गड़ासा हाथ में ही लिए हुए भागा आया। मशीर माल ने कहा,—"यह डाची ले जाकर बाँध दो। १६५ रु० में, कहो कैसी है?"

नूरे ने हतबुद्धि-से खड़े बाकर के हाथ से रस्सी ले ली और नख से शिख तक एक नजर डाची पर डाल कर बोला, "खूब जानवर है," और यह कह कर नौहरे[2] की ओर चल पड़ा।

---

१. ऊँटों की एक बीमारी।

२. छाँटी काटने की जगह

तब मशीर-माल ने अंटी से ६० रुपये के नोट निकाल कर चाकर के हाथ में देते हुए कहा; "अभी एक राहक देकर गया है, शायद तुम्हारी ही किस्मत के थे। अभी यह रखो, बाकी भी एक-दो महीने में पहुँचा दूँगा। हो सकता है, तुम्हारी किस्मत से पहले ही आ जायें।" और बिना कोई जवाब सुने वे नौहरे की ओर चल पड़े। नूरा फिर चारा कतरने लगा था। दूर ही से आवाज देकर उन्होंने कहा, भैंस का चारा रहने दे पहले डाची के लिए गवारे का नीरा कर डाल, भूखी मालूम होती है।"

और पास आकर साँड़नी की गर्दन सहलाने लगे।

× × ×

कृष्ण पक्ष का चाँद अभी उदय नहीं हुआ था। विजन में चारों ओर कुहासा-सा छा रहा था। सिर पर दो-एक सितारे निकल आए थे और दूर बबूल और ओंकाँद के वृक्ष बड़े-बड़े काले सियाह धब्बे बन रहे थे। आगे की एक झाड़ी की ओट में अपनी काट के बाहर बाकर बैठा उस क्षीण प्रकाश को देख रहा था जो सरकंडों से छिन-छिन कर उसके आँगन से आ रहा था। जानता था रजिया जागती होगी, उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। वह इस इन्तजार में था कि दिया बुझ जाय, रजिया सो जाय तो वह चुपचाप अपने घर में दाखिल हो।

श्री जैनेन्द्रकुमार

[जन्म सन् १९०५ ई०]

पढ़ाई

जैनेंद्रजी का जन्म कौड़ियागंज, अलीगढ़ में हुआ। सातवीं कक्षा तक हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल ऋषि ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा मिली। शिक्षा के अंतिम दो वर्ष काशी हिंदू विश्वविद्यालय में बीते। सेकेंड इयर में पहुँच कर असहयोग आंदोलन में इन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर जेल गए। इस समय दिल्ली में रहते हैं। पहली कहानी 'खेल' १९२८ में और पहला उपन्यास 'परख' १९२९ में प्रकाशित हुआ। मानसिक तथ्यों की मनोहर व्यंजना में ये अपना सानी नहीं रखते। ये हिंदी के सर्वप्रथम और संभवतः सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। बाद में इनकी अधिकांश रचनाओं में दार्शनिकता का पुट होने से काफी बोझीलापन आ गया है। 'वातायन' 'एक रात' 'नीलम देश की राज कन्या' 'दो चिड़ियाँ' 'जय संधि' और 'पाजेब' आदि कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं। इनके उपन्यासों में 'परख' 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' प्रसिद्ध हैं।

जब माता-पिता बच्चों पर किसी प्रकार का नियंत्रण करते हैं, उन्हें पढ़ने-लिखने का 'कठोर' आदेश देते हैं तब अपनी प्यारी संतान के सुंदर भविष्य की सुख-कल्पना ही इसका मूल कारण होता है; पर बच्चे इसे क्या समझें! इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की इस कहानी में

सुंदर व्यंजना हुई है। एक छोटी लड़की है सुनयना, उसके भावी जीवन को सुखमय बनाने की चिंता उसकी माँ के मन में कैसे व्यापी हुई है और इसके लिए प्रतिपल वह किस प्रकार व्यग्र रहती है इसे मार्मिकता से दिखाया गया है। बच्ची को लिखा-पढ़ाकर खूब कुशल बना देने के लिए वह उसे डाँटती फटकारती है, कठोरता दिखलाती है पर उसके हृदय में बेटी के लिए कितना अगाध ममत्व छिपा हुआ है, इसे लेखक ने बड़ी निपुणता से अनेक रूपों में व्यक्त किया है। नूनो (सुनयना) को केन्द्र में रखकर माता, पिता और बुआ के मन की विविध प्रतिक्रियाओं को दिखाने में लेखक ने बड़ी अच्छी मनोवैज्ञानिक क्षमता का परिचय दिया है इसमें संदेह नहीं। इस कहानी में बाल-प्रकृति का उद्घाटन भी अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है।

पढ़ाई

यह सुनयना जाने कितने बरस की हो जाने पर ठीक ठीक सुनयना बनेगी ? अभी तो दिन भर नूनो ही बनी रहकर ऊधम मचाती डोलती रहती है। जब दो बरस की थी, मैंने गोद में बिठाकर पूछा—"बिट्टी तेरा नाम क्या है ?"

बिट्टी ने कहा—ऊँ-ईं।

बिट्टी की बुआ ने कहा—"नूनो! हाँ, बिट्टो, फिर कहना नूनो !"

और बिट्टी ने फिर कहा—ऊँ-ई।

हम सब हँस पड़े, उसने झट दोनों हाथ लपकाकर मेरी दाढ़ी पकड़ ली, कहा—आ-ऊँ-ऊँ ईं।

तब तो यह सब कुछ ठीक था। पर, अब चार बरस और गुजर गये हैं, छह बरस से भी ऊपर की हो गई है। अब पुराना वह सब कुछ नहीं निभ सकेगा। उमर आ गई है कि अब अदब सीखे, कहना माने, और शऊर से रहे। और, वह शऊर जानती नहीं। छह बरस की लड़कियाँ दूसरी जमात तक पहुँच जाती हैं, और एक यह है कि माँ का दूध नहीं छोड़ना चाहती। यों काम में माँ को अँगूठा दिखाकर भाग जाती है। माँ इससे बड़ी असन्तुष्ट है—एक तो लड़की है, वह यों बिगड़ी जा रही है। बिगड़ जायगी तो फिर कौन सँभालेगा, उन्हीं के सिर तो सब पड़ेगा। सो, वह भी औरों की तरह फिकर करना छोड़ बैठें, तो कैसे चले। उनकी और सुनन्दा की कहा-सुनी इस बात पर अक्सर हो जाती है।

बिट्टी की बुआ कहती है—"अरी, क्यों उसे धमकाया करती है। आखिर, बच्ची ही तो है।"

वह कहती हैं—"जीजी, बच्ची तो है, पर लाड़ का बखत होता है। लाड़ क्या मैं करना नहीं जानती ? पर, उमर होती, और काम के बखत का लाड़ बिगाड़ ही करता है। और जीजी, काम से आदमी बनता है, लाड़ से तो कोई बनता नहीं है।"

ऐसे समय नये कपड़ों को मैला बनाकर, नूनो यदि आ पहुँ-चती, तो अम्मा उसकी कहतीं—"क्यों, फिर खेलने बाहर पहुँच गई थी ? अब तू ठीक तरह पढ़ेगी नहीं ? अच्छी बात है।"

और उनकी मुद्रा को देखकर नूनो बुआ की गोद के पास सरक जाती। और बुआ उसे गोद में दुबका लेतीं।

उस समय 'नहीं जीजी, यह नहीं होगा'—कहतीं, और नूनो को उस गोद में से खींचती हुई वह ले जातीं। उसे रुलातीं, और फिर गोद में लेकर, तभी मँगा-कर मीठी मीठी बर्फी खिलातीं।

उनके पेट की कन्या है, पर दुनिया बुरी है। उसने पढ़ना-लिखना जैसी भी चीज अपने बीच में पैदा कर रखी है। और उसी दुनिया में मास्टर लोग भी हैं, जो डंडा दिखाकर बच्चों को पढ़ा देंगे और आप से रुपया लेकर पेट पाल लेंगे। और उसी दुनिया में एक चीज है प्रतिष्ठा। और भी इसी तरह की बहुत-सी चीजें हैं। और फिर है ब्याह, जिसमें एक सास मिलती है और एक ससुर मिलता है।

वह माँ है, और उसके पेट की कन्या है। पर इस दुनिया को लेकर वह झंझट में पड़ जाती है। तभी नूनो को थप्पड़ मार कर अपनी गोदी से दूर करके कहती हैं—"पढ़ !"

और नूनो रोती है और पढ़ नहीं सकती !

और माँ कहतीं हैं—"कम्बख्त, पढ़।"

तब लड़की के पढ़ उठने से ही गुजारा होता है। या माँ के जी में आँसू की भाप-सी उठ आने पर भी गुजारा हो जाता है। तब वह कहती हैं—"मास्टरजी, इसे तस्वीर वाला सबक पढ़ाना और मास्टरजी, इसके मन के मुताबिक पढ़ाना।..."

और फिर नूनो की ओर जो देखती हैं, तो और कहती हैं—"अच्छा मास्टर जी, आज छुट्टी सही। जरा कल जल्दी आ जाना।"

माँ तो माँ है, पर लड़की तो सदा लड़की बनी रहेगी नहीं। माँ के मन में यही बात उठकर दर्द दे रही है। आज तो लड़की है, पर एक कल भी तो आ पहुँचने वाला है, जब उसका ब्याह होगा, और लोग पूछेंगे, कितना पढ़ी है, क्या जानती है। तब उनके सामने यह बात किस तरह कहने लायक हो सकेगी कि मेरे बड़े दुलार की है, बड़े प्यार से मैंने पाला है। तब तो खोज कर यही कहना होगा कि खूब काम सीखा है, और उस मास्टर से इतना पढ़ी है, और वहाँ से यह पास किया है। उस कल के दिन आने पर चुप नहीं रह जाय, बल्कि बहुत कुछ उस रोज कहने के लिए और दिखाने के लिए उसके पास जमा हो—इसी के प्रबन्ध में तो वह है। वह माँ तो है, पर यह भी कैसे भूले कि इसी लिए है कि किसी अजनबी को खोजकर पाये और उसे अपनी लड़की सौंप डाले। यह जिम्मेदारी वह बहुत कम क्षण भूल पाती है।

मैं लिख रहा था, उन्होंने आकर कहा—"तुम तो देखते नहीं हो, और नूनो यों ही रह जायगी। पढ़ने-लिखने में उसका चित्त नहीं है। और तुम घर से वैरागी बने हो। क्यों नहीं बुलाकर उसे जरा कुछ कहते ?"

मैंने कहा—अभी छः बरस की ही तो है।

"यों ही बीस बरस की भी हो जायगी।"

मैंने हँसकर कहा—"यों ही तो बीस बरस की कैसे हो जायगी। चौदह बरस बीच के काट लेगी तब होगी।"

"तुम तो यों ही कहते हो। मैं कहती हूँ, नेक उसका ख्याल भी रख लिया करोगे, तो कुछ तुम्हारा बिगड़ नहीं जायगा।"

मैंने कहा—"अच्छी बात है—"

"अच्छी बात नहीं है..."

मैंने कहा—"अच्छा, अच्छी बात नहीं है—"

होते होते वह सचमुच बिगड़ने-सी लगीं।

मैंने कहा—"तुम उसे नूनो फिर क्यों कहती हो? नाम तो उसका सुनयना है। नूनो बनकर वह खिलवाड़ नहीं छोड़ सकती। और तुम कहना चाहती हो उसे नूनो, फिर चाहती हो, खेलना छोड़ दे। अर्थात् नूनो रहना छोड़ दे। तुम उसे नूनो रखना छोड़ दो, वह भी आप छोड़ देगी।"

"हाँ मैं सुनयना नहीं, और कुछ कहूँगी। तुम्हारी मत कैसी है कि उल्टे मुझे ही कहते हो, यह नहीं कि उसे नेक बुलाकर समझा देते।"

"मैंने कहा, "अच्छा, अच्छा, तुम चाहती क्या हो?"

उन्होंने कहा—"मैं पाठशाला तो भेजना नहीं चाहती। अध्यापिका सब ऐसी ही होती हैं। बच्चे का नेक ख्याल नहीं रखतीं। और धमकाये मारें भी, उसका क्या ठीक है। नहीं, बच्चे को मैं आँख-ओझल नहीं करूँगी। पर, एक पढ़ानेवाली और लगा दो। घर पर पूरे पाँच घण्टे उसे पढ़ना चाहिये।"

मैंने कहा—"पाँच घण्टे!"

मैंने कहा—"पाँच घण्टे!"

"तुम्हारा बस हो, तुम सारी उमर उसे खेलने दो।"

मैंने कहा—"पाँच घण्टे बहुत होते हैं। एक घण्टा पढ़ लेना बहुत काफ़ी है। यों अभी जरूरी वह भी नहीं है।'

"तुम्हारे लेखे जरूरी कुछ नहीं है। सिर तो मेरे बीतती है।"

मैंने कहा—"अच्छी बात है, एक घण्टा मैं पढ़ा दिया करूँगा।"

"तुम पढ़ाकर रखोगे ! यह होता तो दिन ही अच्छे न होते ?'

मैंने कहा—"समझो, अब दिन अच्छे आ गए। मैं पढ़ाऊँगा।"

"पढ़ाना,—कहीं तमाशा करो—"

"जैसे पढ़ाऊँगा, पढ़ा दूँगा। यह काम तो मेरे ऊपर रहने दो।"

वह आश्वस्त और प्रसन्न होकर बोलीं—"अच्छी बात है। मैं देख लिया करूँगी।"

और वह चली गईं, और मैं अपने काम में लग गया।

पर कुछ ही देर में वह लौट आईं, और मेरे सामने के कागजों को सरका देकर मेज के पास खड़ी हो रहीं। जिज्ञासा भाव से मैं उनकी ओर देखकर रह गया।

बोलीं—"तुम नाराज तो नहीं हो गए। देखो, नाराज मत होना। मैं क्या करूँ ? मेरा मन कहता है, बिट्टन को खूब पढ़ाना चाहिए, और खूब अच्छा बनाना चाहिए। इसी से मैं कहती हूँ। ……"

मैंने कहा—"ठीक तो है।"

"मेरे मन बिथा बड़ी होती है। तुम जानो, उसका ब्याह भी होगा। इसीसे मैं इतना कहा करती हूँ।"

मैंने कहा—"ठीक तो है।"

और सोचा, लड़की को ब्याह देने के वक्त की व्यथा को

इतने साल दूर से खींच लाकर अपने मन में आज ही प्रत्यक्ष अनुभव कर उठानेवाला स्त्री-माता का हृदय कैसा है ?"

× × ×

सबेरे ही सबेरे कोलाहल सुन पड़ा। जान पड़ता है, यह हो-हल्ला फिर नूनो को लेकर ही है। नूनो नहीं होती घर में, तब सब चुपचाप अपने-अपने में ही रहते हैं, मानों उन्हें अपने काम से और अपने निज से ही मतलब है, एक दूसरे से कुछ मतलब शेष नहीं रह गया है। नूनो न हो बीच में, तो हम दोनों तक को आपस में बात करने के लिए विषय का अभाव-सा लगता है। नूनो को लेकर आपस में बोल लेते हैं, झगड़ लेते हैं, मिल लेते हैं। इस तरह खाली-से हम नहीं रहते। दिन भरे-से-हुए बीत जाते हैं।

सुना, कहा जा रहा है, "तो नहीं पिएगी, तू दूध ?"

"नहीं पीते।"

"नहीं पीती ?"

"हम नहीं पियेंगे ?"

"देख लो, जीजी, यह तुम्हारी बेटी जी दूध पीती नहीं हैं।" यह जोर से कहा गया।

और दूर चौके से नूनो की बुआ ने कहा—"दूध पी ले बेटी। कैसी रानी मेरी बेटी है !"

रानी बेटी ने कहा—"हमें रोज-रोज दूध अच्छा नहीं लगता—"

नूनो की माँ ने कहा—"रोज-रोज खेलना तो बड़ा अच्छा लगता है !"

बुआ ने चौके से आते हुए कहा—"पी ले, बेटी; फिर खेलना।"—और अपनी छोटी भौजाई को कहा—"बच्चे को नेक प्यार से कहो, सब मान जायगा।"

"प्यार से नहीं, मैं तो बड़े गुस्से से कहती हूँ ? लड़की इसी से तो मुँह चढ़ी है।"

बुआ ने कहा—"पी, बेटी, पी—"

मैं अपने कमरे में बैठकर यह सुनने लगा। मेरी बहन चली गई, और लड़की ने शायद दूध पीना आरम्भ कर दिया।

इतने में नीचे से पड़ोसी के लड़के हरिया ने आवाज दी—"नूनो, ओ नूनो !"

नूनो ने कहा—"आई !"

नूनो की माँ ने कहा—"पहले दूध पी—(और कहा)—हरी, वह नहीं आएगी।"

हरिया ने जोर से कहा—"नूनो; अरी आई नहीं ?"

इतने में मैंने सुना—बच्चों को कड़ी ताकीद में रखने की उपयोगिता के सम्बन्ध में भाषण आरम्भ हो गया है, जिसमें श्रोतृवर्ग में केवल बालकों के पिता लोग ही जान पड़ते हैं। और मेज पर शायद एक बाल-मूर्ति भी है, जिसको भली भाँति डाँट-डपट कर और मारपीट कर भाषण, सामने के सामने, सोदाहरण परिपुष्ट किया जा रहा है।

मैं समझ गया; नूनो अनुशासन की मर्यादा को, हरिया की बाँसुरी की-सी आवाज पर तोड़ ताड़ कर अपने शिशु अभिसार को संपन्न करने के लिए भाग छूटी है। और मैंने जान लिया, अपने विक्षोभ को खर्च कर डाल कर स्वस्थ हो जाने के लिए, विवाद मोल लेने को मेरी पत्नी अब फिर बहन के पास पहुँच गई हैं। और जो वहाँ होना आरम्भ हो गया, उसकी स्पष्ट ध्वनि भी मेरे कानों पर आकर थप्पड़ों-सी बजने लगी।

मैं उस ओर से उदासीन होकर बाहर छज्जे पर आ गया, और गली देखने लगा।

नीचे देखता हूँ, इस चौबीसों घण्टे चलने वाली पत्थर की गली को तो ये बालक लोग भरा समन्दर बना बैठे हैं, और इस समन्दर में अकेली खड़ी हुई नूनो नाम की मछली झुककर, अपने टखने छूकर, कह रही है—"इत्ता !"

पर, मुझे तो कुछ भी मालूम न था। मछली का नाम नूनो तो नहीं है, गोपीचन्दर है, और हरिया के साथ और पाँच-सात जने मिलकर, किनारे खड़े-खड़े कह रहे हैं—

"गोपीचन्दर, भरा समन्दर,
बोल मेरी मच्छी, कित्ता पानी ?......"

और गोपीचन्दर जैसे सुन्दर नामवाली मीन अब की घुटनों तक ही झुक सकती है, क्योंकि समुद्र इस बीच घुटनों तक बढ़ आया है, और बतलाती है—"इत्ता !'

समुद्र क्षण-क्षण बढ़ रहा है, और उस मछली के मन की चौकसी भी बढ़ रही है। वह देख, जो अब की गाकर और चिल्लाकर पूछा गया है 'कित्ता ?' तो वह दोनों हाथों को कटि पर रखकर, एक ठुमकी लगाकर बतला रही है, 'इत्ता।' हाय-हाय देखो, उस बेचारी के कटि तक समुद्र का पानी आ गया है, वह सिर तक डूबने को होती जा रही है।—

और मुसाफिर भाई, तुम बेखटके इस गली में से निकलते चले जाओ। तुम्हारे लिए रोक-टोक नहीं है। पानी तुम्हें नहीं छुयेगा। किनारे खड़े वे जो ऊधम करते हुए लड़के लड़कियाँ हैं, सो ये अब शरारत करके समन्दर पर हमला करने वाले हो रहे हैं, और गोपीचन्द्र नाम की अकेली मछली ही अपने राज्य की रक्षा करने के लिए कटि-बद्ध हुई गली के बीच में खड़ी है। मुसाफिर, तुम झट से निकलते हुए चले जाओ, नहीं तो ये लोग

समन्दर में घुस पड़ेंगे, तब वह कुछ नहीं जानेगी, एकाध को जरूर पकड़ लेगी, और तब उसे उसी की तरह गोपीचन्द्र नाम की मछली बनकर समन्दर में रहकर पहरा देना होगा। और उनको भी तो देखो। कैसे उल्लसित बाट देख रहे हैं कि पानी उस समन्दर की रानी के कान तक आया नहीं कि वे हुकूमत की स-धूम धाम अवज्ञा करके समन्दर में घुस पड़ेंगे और जोर-शोर से मल-मलकर नहा डालेंगे।

पर, मत समझो, रानी चौकन्नी नहीं है, उसके राज्य में पैर रखकर देखो तो—। वह एक एक को ऐसा पकड़ती है कि हाँ।

सब ने पूछा—"मच्छी मच्छी, कित्ता पानी ?"

मच्छी-रानी एकदम अपने दोनों तरफ देखती हुई सतर्क हो रही। वह सबको खूब अच्छी तरह ताड़ रही है—

उसने कान तक हाथ बढ़ाया, कहा—"इत्ता"

और सब धम्म-धम्म गली के पत्थर पर कूदकर बदन मलते हुए नहाने लगे। मच्छी रानी हँसती हुई इन चोरों को पकड़ने के लिए दौड़ने लगी।

वह पास आती कि नहानेवाले उछलकर किनारे हो रहते। बेचारी मछली, पानी छोड़; किनारे की खुश्की पर कैसे पैर रख सकती !

पर, सामने को दौड़नेवाली होकर जो एक दम मुड़कर पीछे लपकी कि एक कुर्ते का छोर मुट्ठी में आ गया। रानी चिल्लाई—"पकड़ लिया" और हँसती हुई हाँफने लगी।

श्री० हरिश्चन्द्र इस चोर-कार्य में युक्त पकड़े गए। और पकड़े जाकर वह भी निर्लज्ज हो हँसने लगे।

नौकर ने नूनो का हाथ पकड़ कर कहा—"चलो, बहूजी बुलाती हैं।"

नूनो ने हाथ छुड़ाकर कहा—"नहीं जाते!"

नौकर ने छूटा हुआ हाथ जोर से पकड़ लिया।

वह मचल पड़ी—"हम नहीं जायँगे, नहीं जायँगे!"

खेल भंग हो गया।

मैंने ऊपर से कहा—"छोड़ दो।"

नौकर छोड़कर चला गया।

मैं अपनी मेज़ पर आ गया।

खेल फिर अवश्य आरम्भ हो गया होगा।

बहूजी ने पूछा—"कहाँ है?"

नौकर ने कहा—"आती नहीं।"

बहूजी ने कहा—"इसीलिए तुझे भेजा था? कहे, आती नहीं?"

नौकर—"बाबू जी ने मने कर दिया।"

"कौन बाबू जी?'

नौकर की कुछ आवाज़ न आई।

"बाबू जी कौन होते हैं! तुझ से मैंने कहा था या और किसी ने कहा था!—चल, ला उसे।"

नौकर बाहर आया, और मैंने छज्जे पर पहुँच कर फिर कह दिया—"रहने दो—छोड़ दो।"

लड़की सहमी, और फिर खेलने लगी।

नौकर ने मेरी ओर देखा—"बाबू जी !—"

मैंने कहा—"तुम जाओ, कुछ बात नहीं है।"

नौकर लौटकर आ गया। उसकी बात बहूजी ने चुपचाप सुन ली। कुछ भी उन्होंने नहीं कहा। उन्हीं कपड़ों बाहर आईं, रोती पीटती नूनो को खचेड़ती ले चलीं।

भीतर आकर बोलीं—"तेरे बाबूजी अब आकर रोकें न मुझको !"

मैंने सुन लिया और मैं कमरे से निकल कर उनके सामने नहीं जा पहुँच सका।

नूनो को एक कोठरी में मूँद दिया गया।

× × ×

मूँद तो दिया गया, पर मुँदा रहने दिया जाता कैसे ? क्योंकि माँ ने बेटी को मूँदा था। और क्या मैं जानता नहीं कि इस बीच वह माँ रो भी ली खूब ? बहुत था, जी बह जाना था। लेकिन मैंने खाना न खाया, और शाम को भी न खाया।

वह क्या गजब किया मैंने ?

क्योंकि जब मैंने कहा—"मैंने लड़की का एक घण्टा पढ़ाने को लिया है। मेरी यही पढ़ाई है। अब तुम इसमें दखल देने नहीं पाओगी। तब उसने आँसुओं से सब कुछ, सब कुछ, स्वीकार कर लिया।

पर चौथे रोज वह मायके चल दीं।

× × ×

वह आ गई हैं, और मेरी बात सब झट मान लेती हैं।

पर हाल वही है। क्योंकि लड़की को पढ़ना है और पिट कर दुबली होगी, तो डाक्टर हैं, और डाक्टर के लिए पैसा है,—पर लड़की को पढ़ना है।

मैं कहता हूँ—अच्छा, बाबा।

और अकेले में नूनो से मच्छी मच्छी खेलना चाहता हूँ। और नूनो खेलती नहीं, मुझसे किताब के माने पूछती है।

श्री सियारामशरण गुप्त

[जन्म सन् १८९५ ई०]

बैल की बिक्री

गुप्त जी झाँसी के चिरगाँव नामक कस्बे के रहने वाले हैं। ये राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुज हैं। हिंदी के एक विशिष्ट कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार और निबंध-लेखक के रूप में इनकी प्रतिष्ठा है। गांधी जी और गांधीवाद का इनके जीवन पर गहरा प्रभाव है। इनकी सभी कृतियाँ प्रेम, करुणा, दया आदि मानवतावादी आदर्शों से अनुप्राणित हैं। इनके व्यक्तित्व की विनयशीलता और सरलता इनकी रचनाओं में अनेक प्रकार से मार्मिक रूप में प्रकट हुई है। अनेक कविता-पुस्तकों के अतिरिक्त इनके 'गोद' और 'नारी' नामक उपन्यास तथा 'मानुषी' नामक कहानी संग्रह और 'झूठ-सच' नामक निबंध-संकलन प्रकाशित हुए हैं।

प्रस्तुत कहानी में किसान जीवन की मार्मिक झलक दी गई है। मोहन की दयनीय आर्थिक स्थिति, सरल और भीरु स्वभाव तथा बैल के

प्रति उसका प्रगाढ़ ममत्व उसे एक प्रतिनिधि (टिपिकल) किसान के रूप में सामने लाते हैं। सूदखोर जमींदार ज्वालाप्रसाद की निर्दयता और स्वच्छन्द मनोवृत्ति वाले शिबू पर उसकी गंभीर प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप कहानी आगे बढ़ती है। भाषा शैली इस कहानी की रोचक, व्यंजक और स्थान स्थान पर वक्रोक्तिपूर्ण है।

बैल की बिक्री

कई साल से फसलें बिगड़ रही थीं। बादल समय पर पानी नहीं देते थे। खेती के पौधे अकाल-वृद्ध होकर असमय में ही मुरझा रहे थे। परन्तु महाजनों की फसल का हाल ऐसा न था। बादल ज्यों-ज्यों खिंचते, उनकी खेती में त्यों-त्यां नये अंकुर निकलते थे।

सेठ ज्वालाप्रसाद उन्हीं महाजनों में से थे। विधाता के वर से उनका धन अक्षय था। जिस किसान के पास पहुँच जाता, जीवन-भर उसका साथ न छोड़ता। अपने स्वामी की तिजोरी में निरन्तर जाकर भी दरिद्र झोपड़ी की माया उससे छोड़ी न जाती थी !

मोहन बरसों से ज्वालाप्रसाद का ऋण चुकाने की चेष्टा में था परन्तु वह कभी सफल न होती थी। मोहन का ऋण दरिद्र के वंश की तरह दिन-पर दिन बढ़ता ही जाता था। इधर कुछ दिन से ज्वालाप्रसाद भी कुछ अधीर से हो उठे थे। रुपये अदा करने के लिए वह मोहन के यहाँ आदमी पर आदमी भेज रहे थे।

समय की खराबी और महाजन की अधीरता के साथ मोहन को एक चिन्ता और थी। वह थी जवान लड़के, शिबू की निश्चिन्तता। उसे घर के काम काज से सरोकार न था। बिलकुल

ही न था, यह नहीं कहा जा सकता; भोजन करने के लिए यथा-समय उसे घर आना ही पड़ता था। बाप, मजूरी के पैसे लाकर किस जगह रखता है, इसके ऊपर दृष्टि रखनी पड़ती थी। पता मिल जाने पर बीच-बीच में उन्हें सफाई के हाथ से उड़ाना भी पड़ता था। ऐसे ही और बहुत काम थे। दो-चार बार उसे बैल-गाड़ी किराये के लिए चलानी पड़ी थी। सम्भव है, यह बेगार आगे चलकर और अधिक करनी पड़ती। परन्तु हाल में ही यह सम्भावना भी असम्भव हो गयी है। अचानक एक दिन दो-चार घंटे की बीमारी से हाल में ही उसका बैल चल बसा था। इस प्रकार ईश्वर ने उसके स्वच्छन्द विचरण के पथ में एक सुविधा और कर रक्खी थी। घर वालों के साथ उसका वही संबंध जान पड़ता था जो खेती के साथ उन बादलों का होता है, जिनके दर्शन ही नहीं होते—यदि कभी होते भी हैं तो आये हुए धान्य को खेत में ही सड़ा देने भर के लिए।

परन्तु बादल चाहे जैसी शत्रुता रखें, खेती के लिए उनसे प्यारी वस्तु और कोई नहीं होती। मोहन भी शिबू का विचार इसी दृष्टि से करता था। सोचता था, अभी बच्चा है। हमेशा ऐसा ही थोड़े रहेगा। जब वह शिबू की कोई बात आयी-गयी कर जाता तब उसे अपने मृत पिता की याद आ जाती। उसने भी अपने पिता को कम नहीं खिझाया था, पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे बड़ा साधन कदाचित बच्चे को प्यार करना ही है। शिबू का यथेच्छाचार क्षमा करते समय प्रायः मोहन का हृदय गद्गद् हो उठता था।

उस दिन कलेवा करके शिबू बाहर निकल रहा था। मोहन ने पीछे से कहा, "लल्लू आज मुझे एक जगह काम पर

जाना है। बैल की सार साफ करके तुम उसे पानी पिला देना।"

शिबू ने बाप की ओर मुड़ करके कहा, "मुझसे यह बेगार न होगी। मुझे भी एक जगह जाना है।"

मोहन जानता था कि काँच की तरह सीधी गरमी दिखाकर इसे झुकाने की इच्छा रखना मूर्खता है। विनती के स्वर में बोला, "बेटा, मुझे काम है। नहीं तो तुझ से क्यों कहता? कौन बहुत देर का काम है।"

शिबू उसी तरह अविचल कंठ से बोला, "थोड़ी देर का काम हो या बहुत देर का, मुझे वाहियात कामों की फ़ुर्सत नहीं है।"

मोहन झुँझला पड़ा। क्रुद्ध होकर बोला, "कैसा है रे! बैल को पानी पिलाना वाहियात काम बताता है। किसानी न करेगा तो क्या बाबू बनकर डाकखाने में टिकट बेचेगा?"

"ठीक तो कहता हूँ, नाराज क्यों होते हो? कितनी बार कहा, इसे बेच दो, अकेला बँधा-बँधा खा रहा है। सार साफ करो, पानी पिलाओ, भूसा डालो, इधर से उधर बाँधो, उधर से इधर। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। किसी काम आता हो तो बात भी है।"

"चुप रह! घर में जोड़ी न होती तो इतनी बातें बनाना न आता। बैल किसान के हाथ-पैर होते हैं। एक हाथ टूट जाने पर कोई दूसरा भी कटा नहीं डालता। मैं इसका जोड़ मिलाने की फिक्र में हूँ, तू कहता है—बेच दो। दूर हो, जहाँ जाना हो चला जा। मैं सब कर लूँगा।"

"जा तो रहा ही हूँ। मैं कुछ ऐसा दुबैल नहीं हूँ।" हँसकर कहता हुआ शिबू घर के बाहर हो गया। मोहन कुछ देर ज्यों का त्यों खड़ा रहकर, बड़बड़ाता हुआ उठा और जाकर बैल को थपथपाने लगा। शिबू ने जो अवज्ञा की थी मानो उसकी क्षति-पूर्ति करने के लिए अपने हृदय का समस्त प्यार ढालने लगा।

उस दिन मोहन ने सार की सफाई और अच्छी तरह की। बैल को पानी पिलाने ले गया तो सोचा, इसे नहला दूँ। उजड्ड लड़के ने बैल का जो अपमान किया था, उसे वह उसके अन्तस्तल तक से धो देना चाहता था। नहला चुकने पर अपने अँगोछे से पानी पछा। बाँधने की रस्सी को भी पानी से धोना न भूला। सार में बाँधकर भूसा डाला। तब भी मन की ग्लानि दूर न हुई तो भीतर जाकर रोटी ले आया और टुकड़े-टुकड़े करके उसे खिलाने लगा। वह कहा करता था कि जानवर अपनी बात समझा नहीं सकते, परन्तु बहुत-सी बातें आदमियों से अधिक समझते हैं। इसलिये वह अनुभव कर रहा था कि बैल उसके प्रेम को अच्छी तरह हृदयंगम कर रहा है।

इस तरह आज इतना समय लग गया, जितना लगना न चाहिये था। यह बात उसे उस समय मालूम हुई जब ज्वाला-प्रसाद के आदमी ने आकर बाहर से पुकारा, "मोहन है?"

मोहन सुनकर सन्न-सा खड़ा रह गया। उसे शिबू पर गुस्सा आया। अगर वह पाजी बैल का उसार कर देता तो वह इस आदमी को घर थोड़े मिलता। शंकित मन से बाहर निकलकर बोला, "कौन, रामधन भैया! आओ, तमाखू पी लो।"

रामधन ने रुखाई से कहा, "फुर्सत नहीं है। इसी दम मेरे साथ चलो। तुम-जैसे छँटे हुए आसामी से भी किसी का पाला

न पड़ा होगा। तुम्हारे पीछे फिरते-फिरते पैरों में छाले पड़ गये, परन्तु मालिक साहब के दर्शन ही नहीं होते।"

सचमुच रामधन के पैरों में छाले पड़े हुए थे, इसीसे उसका मिजाज ठीक न था। परन्तु छाले पड़ने का कारण मोहन के पीछे फिरना नहीं था; एक चमार आसामी ने मुफ्त में जूते बनाकर कुछ दिन के लिये उससे छुट्टी पाने का वचन लिया था। उन जूतों ने रामधन को चलने फिरने से ही कुछ दिन के लिये छुट्टी देकर अपने निर्माता का लेन देन बराबर कर देना चाहा। रामधन इस समय उसी चमार को नये-नये शब्दों में याद करता चला आ रहा था। मोहन ने देखते ही समझ लिया, मामला ठीक नहीं है। चुपचाप भीतर से लाकर अँगोछा कन्धे पर डाला और उसके पीछे हो लिया।

रास्ते में मोहन ने फ़सल खराब होने की बात शुरू की। किसानों का गुजारा किस तरह हो, इस बात की ओर संकेत किया। एक पैसे का सुभीता नहीं है, यह भी स्पष्टतः कहा। रामधन मुँह भारी किये हुए सुनता रहा। मानो उत्तर देना नितान्त आवश्यक हो गया, तब संक्षेप में कह दिया, "मालिक से कहना।"

मोहन ने कहा, "हमारे मालिक तो—"

"चुप रह बदमाश!" रामधन ने कहा। कहने का अभिप्राय था—मालिक मैं नहीं हूँ। उच्चारण-भंगी का अभिप्राय था—मालिक हूँ तो मैं। "बड़ी देर की बक बक लगाये हैं, चुका नहीं सकता तो कर्जा लिया ही किस लिये था?"

रामधन के साथ वह ज्वालाप्रसाद की कोठी पर जा पहुँचा। ज्वालाप्रसाद ने अपने स्वर में संसार भर का प्रभुत्व भर कर कहा, "वादे बहुत हो चुके। अब हमारे रुपये अदा कर दो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा?"

मोहन ने कहा, "मालिक की बातें! खाने को मिलता नहीं, रुपये कहाँ से आयें ?"

बातों-ही-बातों में ज्वालाप्रसाद की जीभ की ज्वाला बेहद बढ़ गयी। 'नमक-हराम', 'सूअर' आदि जितनी उपाधियों से एक दम वह निरीह मंडित हो उठा, उस सबके लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

मोहन घर न जा सका। रुपये अदा कर दो और चले जाओ, बस इतनी ही बात थी।

शिबू ने तीसरे पहर घर आकर देखा, दद्दा नहीं हैं। मालूम हुआ, सबेरे ज्वालाप्रसाद के आदमी के साथ गये थे। दोपहर को रोटी खाने भी नहीं आये।

शिबू झपाटे के साथ घर से निकलकर ज्वालाप्रसाद के यहाँ जा पहुँचा। बाप को मुँह सुखाये पसीने-पसीने एक जगह बैठा देखा। बोला, "चलो। आज रोटी नहीं खानी है ?"

आवाज सुनकर दूर से ज्वालाप्रसाद ने कहा, "कौन है, शिबुआ ? दाम लाया या यों ही लिवाने आ गया ?"

शिबू ने अपने कर्कश कंठ को और भी कर्कश करके कहा, "तुम अपनी रुपट्टी लोगे या किसी की जान ? अरे, कुछ तो दया होती। बूढ़े ने सबेरे से पानी तक नहीं पिया। तुम कम-से-कम चार दफ़े भोजन ठूँस चुके होगे।"

मोहन लड़के का ढंग देखकर घबरा उठा। बोला, "अरे ढोर, कुछ तो समझ की बात कर। किससे किस तरह बोलना चाहिये, आज तक तुझे यह शऊर भी न आया !"

"न आने दो। चलो उठो। मैं तुम्हें यहाँ कसाई की गाय की

तरह न मरने दूँगा। रामपुर की हाट में सोमवार को बैल बेचकर उनकी कौड़ी-पाई चुका दूँगा।" कहकर शिबू ने बाप का हाथ पकड़ा और उसे झकझोरता हुआ साथ ले गया।

ज्वालाप्रसाद हतबुद्धि होकर ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। उन्होंने शिबू के जैसा निर्भय आदमी देखा न था। उनके मुँह पर ही उन्हें कसाई बना गया। गुस्से की अपेक्षा उन्हें डर ही अधिक मालूम हुआ। वे भी उसी हाट में रामपुर जा रहे थे। आजकल डाकुओं का बड़ा जोर था। यह शिबुआ भी तो कहीं डाकुओं में नहीं है? कैसा ऊचा-पूरा हृष्ट-पुष्ट पट्ठा है। बोलने में किसी का डर नहीं; चलने में किसी का बन्धन नहीं। दिन-भर फिर किसी काम में ज्वालाप्रसाद का मन नहीं लगा। बार-बार उसका तेजदृप्त चेहरा उन्हें याद आता रहा।

दो दिन में ही ऐसा जान पड़ने लगा मानों मोहन बहुत दिन का बीमार हो। दिन भर वह बैल के ही विषय में सोचा करता। रात को उठकर कई बार बैल के पास जाता। दिन में और लोगों के सामने अपना प्रेम पूर्ण रूप से प्रकट करते हुए उसे संकोच होता था। रात के एकांत में उसे अवसर मिलता। बैल के गले से लिपट कर प्रायः वह आँसू बहाने लगता। यदि कभी शिबू उसका यह आचरण देख लेता तो उसे ऐसा जान पड़ता मानो वह कोई अपराध कर रहा हो।

हाट जाने के एक दिन पहले उसने शिबू से कहा, "एक बात बेटा, मेरी मानना। बैल किसी भले आदमी को देना जो उसे अच्छी तरह रक्खे। दो-चार रुपये कम मिलें तो ख्याल न करना।"

शिबू बिगड़ कर बोला, "तुम्हारी तो बुद्धि बिगड़ गयी है।

जब देखो, 'बैल' की रट लगाये रहते हो ! मैं मर जाऊँ तो भी शायद तुम्हें बैल के जितना रंज न हो। बैल जिये या भाड़ में जाय, मुझे कोई मतलब नहीं। जो ज्यादा दाम देगा मैं उसी को बेच दूंगा। हमारा ख्याला कौन रखता है ? मैं भी किसी का न रखूंगा। उस कसाई के रुपये उसके मत्थे मार दूं, मैं तो इतना चाहता हूँ। बस !"

मोहन चुपचाप सुनता रहा। थोड़ी देर बाद एक गहरी साँस लेकर वहाँ से हट गया।

जिस समय बैल की रस्सी खोलकर शिबू हाट के लिये जा रहा था, वहाँ मोहन न था। किसी काम के लिये जाने की बात कह कर वह पहले ही बाहर चला गया था।

बैल बेचकर शिबू घर लौटा आ रहा था। रुपये उसकी अंटी में थे। तो भी आज उसकी चाल में वह तेजी नहीं थी, जो जाते समय थी। न जाने कितनो बातें उसके भीतर आ-जा रही थीं। बैल के बिना उसे सूना-सूना मालूम हो रहा था। आज के पहले वह यह बात किसी तरह न मानता कि उसके मन में भी उस क्षुद्र प्राणी के लिये प्रेम था। मनुष्य अपने-आप के विषय में जितना अज्ञान है, कदाचित उतना और किसी विषय में नहीं है। बार-बार उसे बैल की सूरत याद आती। उसके ध्यान में आता, मानो बिदा होते समय बैल भी उदास हो गया था। उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे। बैल का विचार दूर करता तो बाप का सूखा हुआ चेहरा सामने आ जाता। बैल और बाप मानो एक ही चित्र के दो रुख थे। लौट-फिर कर एक के बाद दूसरा उसके सामने आ-आ जाता था। आह, उसका बाप इस बैल को कितना प्यार करता था। उसे अनुभव होने लगा कि

वह बैल उसका भाई ही था। एक ही पिता के वात्सल्य-रस से दोनों पुष्ट हुए थे। जो बाप जानवर के लिये इतना प्रेमातुर हो सकता है, वह उसके लिये न जाने क्या करेगा ? सोचते-सोचते उसका हृदय पिता के लिये आर्द्र हो उठा। हाय ! वह अब तक अपने ऐसे स्नेहशील पिता को भी न पहचान सका। उसके हृदय का औद्धत्य आज अपने-आप पराजित हो गया था।

घने वन की छाती पर, पत्थर की पक्की सड़क, दोनों ओर के वृक्षों की छाया का उपभोग करती हुई, निर्जन और बस्ती की परवा न करके, बहुत दूर तक चली गयी थी। दूर-दूर तक आदमी का चिह्न तक दिखाई न देता था। बीच-बीच में कुछ हिरन छलाँगें मारते हुए सड़क पार कर जाते थे। अचानक शिबू ने देखा, एक जगह बहुत-सी बैल-गाड़ियाँ ढिली हुई हैं। एक ओर की निर्धनता के आधार पर ही दूसरी ओर की सघनता अवलम्बित है मानो यही दिखाने के लिये ऊँची सड़क के दोनों ओर लगातार नीची खन्दकें चली गयी थीं। दो-तीन सौ आदमी उन खन्दियों में चुप-चाप दूर तक श्रेणीबद्ध बैठे हुए थे। शिबू ने समझा, सड़क पर पुलिस के आदमी हैं। कुछ वसूल कर लेने के लिये इन आदमियों को परेशान कर रहे हैं। पुलिस का विचार आते ही उसका गर्वित हृदय विद्रोही हो उठा। विचारों की शृंखला छिन्न भिन्न हो गयी। वह तेजी से चलने लगा।

"कौन है, खबरदार, खड़ा रह !"

शिबू ने देखा, पुलिस के सिपाहियों की पोशाक में बन्दूकें लिये हुए पाँच आदमी हैं। मुँह कपड़ों से इस तरह बाँधे हुए हैं कि सूरत साफ दिखायी न दे सके। बीच सड़क पर कपड़ा बिछा हुआ है। उस पर रुपये-पैसे और गहनों का ढेर लगा है। शिबू

को समझने में देर न लगी; डाकू हैं, सिपाही नहीं। दिन दहाड़े यहाँ लूट हो रही है। सड़क के नीचे खन्दियों में जो लोग बैठे हैं वे लुट चुके हैं। डाकुओं ने धन के साथ मानो उनकी गति और वाणी भी अपहृत कर ली है।

हाँ तो, एक डाकू फिर कड़क कर बोला, "कौन है, चला ही आ रहा है ? खड़ा हो जा। रख दे जो कुछ तेरे पास हो।"

शिबू ने देखा, अब रुपये जाते हैं। उसे रुपयों का मोह कभी न था। रुपया-पैसा उड़ाना ही उसका काम था। परन्तु ये रुपये··· ये रुपये किस तरह आये हैं, यह बात वह अभी-अभी अनुभव करता आ रहा था। ज्यादा विचार करने का अवसर न था। वह छाती तान कर खड़ा हो गया। बोला, "मैं रुपये नहीं दूँगा।"

बोलने वाला डाकू शिबू का सुदृढ़ कंठ-स्वर सुनकर स्तम्भित हो गया। इतने आदमी अभी लूटे गये हैं; इस तरह तो कोई नहीं कह सका।

दूसरा डाकू बन्दूक का कुन्दा मारने के लिये उस पर झपटा। शिबू ने बन्दूक के कुन्दे को इस तरह पकड़ लिया, जिस तरह सँपेरे साँप का फन पकड़ लेते हैं। अपने को आगे ठेलता हुआ वह बोला, "तुम मुझे मार सकते हो, परन्तु रुपये नहीं छीन सकते। ये रुपये मेरे बाप के कलेजे के खून में तर हैं। मेरे जीते जी महाजन के सिवा इन्हें कोई नहीं ले सकता।" यह कहकर शिबू ने अपने पूरे वेग के साथ निकल जाना चाहा। तब तक पाँच डाकुओं ने घेर कर उसे पकड़ लिया। वह उच्च कंठ से फिर चीत्कार कर उठा, "छोड़ दो। मैं रुपया नहीं दूँगा।"

शिबू का चीत्कार सुनकर लुटे हुए लोग खन्दियों में उठकर

खड़े हो गये। देखने लगे, कौन है, जो प्रत्यक्ष मौत का सामना कर रहा है।

डाकुओं ने एकदम देखा—वे केवल पाँच हैं और दो-तीन सौ आदमी उनके विपक्ष में उठ खड़े हुए हैं। उन्हें विस्मय करने का भी अवसर न मिला कि बन्दूक के बल पर एक-एक दो-दो करके इतने आदमी कैसे लूट लिये हैं। यदि ये इसी उजड्ड की तरह बिगड़ खड़े हों तो कौन इनका सामना कर सकता है? भय और साहस संक्रामक वस्तुएँ हैं। शिबू का साहस देखकर उधर लुटे हुए लोगों का भय भी दूर हो रहा था। देखने तक का समय न था, परन्तु डाकुओं ने स्पष्ट देख लिया—एक साथ सब लोगों के भाव बदल गये हैं। उन लोगों में से कुछ खन्दियाँ पार करके सड़क तक भी नहीं आ सके कि डाकू बन्दूकें हाथ में लिये हुए द्रुत गति से सड़क के नीचे उतर गये। लूट का माल उठाने में समय नष्ट करने की अपेक्षा अपने प्राण लेकर भागना ही उन्हें अधिक मूल्यवान प्रतीत हुआ। थोड़ी ही देर में वे लोग आँखों से ओझल हो गये।

लोगों ने आकर शिबू को चारों ओर से घेर लिया। अधिकांश स्त्री-बच्चे और पुरुष अब तक भय के मारे काँप रहे थे। रोग की तरह दूर हो जाने पर भी भय शरीर को कुछ समय के लिये निःशक्त-सा कर रखता है। स्त्रि ाँ शिबू को आशीर्वाद दे रही थीं—बेटा, तेरी हजारी उम्र हो। परन्तु शिबू इस समय भी अपने आपे में न था। वह सोच रहा था कि इनमें अधिकांश ऐसे आदमी हैं, जो रुपये के लिये बुरे-से-बुरा काम कर सकते हैं। रुपया ही इनका सब कुछ है। उसी रुपये को इन्होंने इस प्रकार कैसे लुट जाने दिया?

भीड़ में से एक आदमी निकल कर शिबू के पास आया। बोला, "कौन है, शिबू माते? तुमने आज इतने आदमियों को......" शिबू ने देखा, ज्वालाप्रसाद है। शरीर पर धोती के सिवा और कोई वस्त्र नहीं। डाकुओं ने रुपये-पैसे के साथ उसके कपड़े भी उतरवा कर रखवा लिये। उसे देखते ही उसका मुँह घृणा से विकृत हो उठा। अंटी से रुपये निकाल कर उसने कहा, "बड़ी बात, शिबू माते, तुम आज यहीं मिल गये। लो, अपने रुपये चुकते कर लो। अब लुट जायें तो मैं जिम्मेदार नहीं!"

पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र'

[जन्म सन् १९०१ ई०]

भुनगा !

'उग्र' जी का जन्म मिर्जापुर जिले के चुनार नामक कस्बे में हुआ। आरंभिक शिक्षा बनारस में हुई। असहयोग आंदोलन के समय स्कूल की पढ़ाई छूट गई। फिर इसके बाद साहित्य के क्षेत्र में आ गए। ये हिंदी के एक विशिष्ट गद्य-लेखक हैं। इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के समय देशभक्ति की भावना से भरी अनेक ओजपूर्ण कहानियाँ लिखीं। परदा-प्रथा, अछूत-समस्या, सांप्रदायिकता आदि विभिन्न सामाजिक कुरीतियों पर लिखी इनकी रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। पर इनकी बाद की रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों का नग्न-चित्रण देखकर आलोचकों ने इनकी कड़ी आलोचना की। जो हो परंतु इसमें संदेह नहीं कि इनकी राजनीतिक और कतिपय सामाजिक कहानियों का ऐतिहासिक मूल्य है। देशप्रेम-प्रेरित आत्मत्याग और जीवनोत्सर्ग के सजीव चित्र उपस्थित करनेवाली उत्साहवर्द्धक राष्ट्रीय रचनाओं के अतिरिक्त मिथ्या धार्मिक उन्माद और अन्य सामाजिक कुरीतियों पर लिखी इनकी कहानियों का महत्त्व विस्मरणीय नहीं है। इनकी भाषा में एक विलक्षण स्फूर्ति है। अपनी ओजस्विता, भावाकुलता और तीखे व्यंग के कारण उग्रजी का गद्य

पर्याप्त शक्तिशाली हो गया है। कहानी के अतिरिक्त इन्होंने निबंध, नाटक, प्रहसन और उपन्यास भी लिखे हैं।

इस प्रतीकात्मक कहानी में 'भुनगा' अहम्मन्यता का प्रतीक है। इसमें अहंकार का दुष्परिणाम दिखाया गया है। उग्रजी की शैली का चमत्कार तथा उनकी व्यंगात्मकता इस रचना में अच्छी तरह देखी जा सकती है।

भुनगा !

कंचनपुर शहर के बाहर उस करील की झाड़ में एक भुनगा रहता था !

उसकी उम्र कल तक तो आठ दिनों की थी। मगर भुनगे के आठ दिन, आदमी के अस्सी बरस से कम नहीं होते !

जिस भुनगे की कहानी हम गा रहे हैं, वह अपने को करील-कुंज-बनवासी अन्य सभी भुनगों से 'विशेष' और 'महान्' और 'प्रतिभाशाली' मानता था।

जब कि, उसके अन्य बन्धु आलस्य-लसित, महज मिट्टी खाकर करील की जड़ में, जड़वत्, पड़े रहते थे, तब वह अपने महान् पंखों से हवा को चीरता था और फुदक-फुदक-वीरता सारे संसार को दिखाता था !

अमूमन भुनगे अपने निवास के लिए करील-बन नहीं पसंद करते, मगर, कंचनपुर के बाहर मरुस्थल और करीलों के अलावा हरियाली है ही नहीं। बेचारे भुनगे जाते तो कहाँ जाते ?

मगर, वह प्रतिभाशाली भुनगा हरे दरख्तों से करील की हवा को ज्यादा "स्वाथ्यप्रद" और खुली कहता था।

"हरियाली हमारा भोजन है, और हरे-हरे पौधे हमारे 'ग्रीन्स होटेल'। जिस तरह आदमी अपने बावर्चीखाने में सोना नापसंद करता है, वैसे ही, हमें भी पेड़-पौधों से; आराम के वक्त परहेज है।"

करील कुंज का वह 'विशेष' भुनगा, मूँछें गोलाकार घुमाकर

गर्व से "टिक्-टिक्-टिक्" स्वर सुनाकर, दस-दस इंच की "जम्प" मारकर बातें करता ! हाँ।

　　　

एक दिन वही भुनगा अपने नन्हें से मुँह में तट की रेत भर-भर समुद्र में डाल रहा था।

किसी ने पूछा—"क्यों जनाब, इतना परिश्रम क्यों ?"

"समुद्र को पाट न दूँ तो मेरा नाम भन्नन भृंग नहीं, भकुआ !"

"क्यों-क्यों महाशय ! आप समुद्र पर इतने नाराज़ क्यों हैं ?"

"इसका बनाने वाला जरूर कोई घोंघा है। इसकी उत्ताल तरंगों ने, उस दिन उच्छाल लेकर मेरे प्रतिभाशाली पंखों को भारी नुकसान पहुँचाया। बस—अब मैं बदला लूँगा। समुद्र को पाट कर ठोस कर दूँगा, जिससे, उछलने, कूदने में, आगे चलकर भुनगाजाति को सुविधा हो।"

"ज़रा मजे में सोच-समझकर परिश्रम कीजिए" किसी ने समझाया श्रीभन्नन भृंग को—"संभव है इस काम में आप काम-याबी न पावें।"

बस, भन्नन जी समझानेवाले के सर-माथे पर हो रहे ! क्रोध से उनकी आँखें लाल लुत्ती-सी लौकने लगीं !!

"मूर्ख !" भुनगे ने ललकारा—"भुनगों—खासकर भन्नन-भृंग—को मामूली मानना बराबर है, कच्चे सूरन को ककड़ी समझकर खाने के !"

"याद रहे !" भुनगा भन्नन एकाएक लेकचर देने के जोश में आ गया, "याद रहे ! वह टिटिहरी या टिटिहरा मेरा ही महान् पूर्वज था, जिसने एक दिन, समुद्र को पाट देने का बीड़ा उठाया था। अबतक तो यह अपार-पारावार, एक भुनगे के द्वारा चित्त

से पट (हो) गया होता, अगर, बीच में बचाव कर, पुराणों के उस दाढ़ी वाले ऋषि ने—समझौता न करा दिया होता।..."

"मैं जानता और मानता हूँ कि, बनाने वाले ने समुद्र बनाने में निहायत मूर्खता दिखाई है।"

   

हमने सुना है, भुनगाराज भन्नन आकाश की बनावट से भी संतुष्ट नहीं थे। उनका ख्याल था कि, समुद्र और आसमान दोनों के बनाने में बेकाम विस्तार और अनर्थक अपव्यय किया गया है। इससे कहीं छोटा समुद्र हमारे लिए बहुत होता और आसमान—छिः ऐसे पुराने; सड़े चीथड़े का चँदोवा, जिसके तार-तार से उस पार के सितारे अपने कर-जाल पसार-पसार कर हमें गिरफ्तार करना चाहते हैं।

रात में, जीर्णता से शीर्ण होकर आसमान, जमीन पर कहीं भहरा न पड़े—इसीलिए, भुनगाराज, अपने इंचों महान् पैरों को उत्तान तान कर सोते थे !

  

और एक दिन, जीवन-यात्रा में पहली बार, भुनगा भन्नन की किसी समुद्री शिकारी चिड़िया से भेंट हो गई।

"ओह सुंदरी ! तुम कौन ? किसने तुम्हें बनाया ?"

"क्या ?" नीली गर्दन मटका कर चिड़िया बोली—"किसने बनाया ? उसी ने तो, जो इस समुद्र को और उस आसमान को, अनायास ही, रच-बिरच सकता है। वही, जिसने तुम जैसे क्षुद्र, भुनगों को भी संसार में फुदकने का चांस दिया है। क्या तुम उसको नहीं जानते ?"

"अलबत्ता नहीं !" आँखें चकित कर, क्रोध से भुनगा फुदका—"संसार में सबसे महान्, सबको बनाने बिगाड़ने वाला,

मैं हूँ। विधाता की हरियाली को मैं चटनी की तरह पचा सकता हूँ। विश्व की खेती मैं ओस के कण की तरह चाट सकता हूँ, सुन्दरी!"

और भुनगा भन्नन फुदका।

और नीलकंठी, शिकारी सुंदरी चिड़िया ने अधिक उछलने के पहले ही, भुनगे को दुम की तरफ से अपनी चोंच में चपेट लिया।

-मरते-मरते भी वह भुनगा टर्र-टर्र टर्राता रहा।

"—मैं समुद्र को पाट सकता हूँ। मैं आसमान को उठा सकता हूँ! मैं सर्वशक्तिमान हूँ और हूँ मैं—अ...म...र...!!"

श्री अज्ञेय

[जन्म सन् १९११ ई०]

पुलिस की सीटी

श्री सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म कसिया (गोरखपुर) में हुआ, जहाँ पिता स्वर्गीय डा० हीरानंद शास्त्री की देखरेख में खुदाई का काम हो रहा था। पिता के साथ आपको देश के विभिन्न भागों में रहने और पढ़ने का अवसर मिला। बचपन काश्मीर, लखनऊ, मिर्जापुर, दक्षिण भारत और बिहार में बीता। इंटर मद्रास से और बी० एस-सी० लाहौर से पास किया। एम० ए० में अंगरेजी लेकर पढ़ रहे थे पर क्रान्तिकारी आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण, १९३० के नवंबर में गिरफ्तार हो गए। जेल में कुल मिलाकर कई वर्ष बीते। बाद में साप्ताहिक 'सैनिक' (आगरा) और मासिक 'विशाल भारत' (कलकत्ता) के संपादकीय विभाग में कार्य किया। गत महायुद्ध में सैनिक अधिकारी के रूप में भी कार्य किया। इस समय दिल्ली के एक अंगरेजी पत्र के संपादक हैं और 'प्रतीक' नामक मासिक पत्र का भी प्रकाशन और संपादन करते हैं। कई देशी-विदेशी भाषाओं के ज्ञाता हैं। 'विपथगा' 'परंपरा' 'कोठरी की बात' 'शरणार्थी' (कहानियाँ और कविताएँ) और 'जयदोल' प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। आप हिंदी के ख्यातिलब्ध कहानी-लेखक, उपन्यासकार, कवि और

आलोचक हैं। आपकी रचनाओं में प्रायः मनोविश्लेषण शास्त्र से अर्जित नवीन ज्ञान के आधार पर वस्तु और शैली संबंधी नये-नये प्रयोग किये गए हैं ।

प्रस्तुत कहानी में क्रान्तिकारी दल के देशभक्त युवक-युवतियों के अद्भुत साहस, दृढ़ संकल्प, अडिग कर्मनिष्ठा और जीवनोत्सर्ग का मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है ।

जब अतीत की किसी घटना से जरा भी सादृश्य रखनेवाली कोई परिस्थिति मनुष्य के सामने आती है तो उसकी स्मृति उद्बुद्ध होकर अंतस्संज्ञा (Subconscious) के क्षेत्र में अंकित पुराने दृश्यों को सिनेमा-चित्रों की भाँति पुनः हमारे चेतन मन की आँखों के सामने ला देती है । इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर प्रस्तुत कहानी का कथाभाग स्थित है । सीटी की आवाज, ध्वनि-सादृश्य के कारण, सत्य की पूर्व-स्मृति को उद्बुद्ध करती है और उसकी चेतना के प्रवाह में वर्ष भर पहले के वे सारे दृश्य सजीव हो उठते हैं जब इसी प्रकार पुलिस की सीटी बजी थी और उसका प्रचंडकर्मी क्रांतिकारी नेता पुलिस की गोली से मारा गया था । सीटी की आवाज एकाधिक बार सुनाई पड़ती है और प्रत्येक बार सत्य के शरीर और मन पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। कहानी के अंत में रहस्योद्घाटन होता है और कथा में ऐसा अप्रत्याशित मोड़ (Turn) आता है कि पाठक चमत्कृत हो जाता है, पर साथ ही उसे एक तरह का संतोष भी मिलता है । नाटकीय सक्रियता और चरम सीमा पर समाप्ति के कारण कहानी में पर्याप्त रोचकता आ गई है । चूड़ामणि और गरिमा के व्यक्तित्व का, स्वल्प परिचय में ही, पाठक पर गंभीर प्रभाव पड़ जाता है। पूरी कहानी में अपेक्षित वातावरण प्रस्तुत करने में लेखक को अच्छी सफलता मिली है ।

पुलिस की सीटी

सीटी बजी।

सत्य सड़क पर चलता-चलता एकाएक रुक गया, स्तब्ध, बिल्कुल निश्चेष्ट होकर खड़ा रह गया।

सीटी फिर बजी।

सत्य के हाथ-पैर काँपने लगे, टाँगें लड़खड़ा-सी गईं; उसे जान पड़ा, मानों अभी संसार अँधेरा हो जायेगा, पृथ्वी स्थान-च्युत हो जायगी—उसने सहारे के लिए हाथ आगे बढ़ाया। हाथ कुछ थाम नहीं सका, मुट्ठी भर उड़ती हुई हवा को अँगुलियों में से फिसल जाने देकर खाली ही रह गया, तब सत्य ने समझ लिया कि वह गिरेगा, गिरकर ही रहेगा। उसने आँखें बन्द कर लीं······

× × ×

एक साल पहले—

पार्क में सत्य धीरे-धीरे टहल रहा था। उसके हृदय में जो व्यग्रता भर रही थी उसे किसी तरह वह छिपा लेना चाहता

था, लेकिन वह छिपती नहीं थी। इस पर उसका मन एकाएक झल्ला उठता था, क्योंकि वह तो क्रान्तिकारी है, उसकी तो पहली सीख ही यह है कि अपने उद्वेगों को प्रकट मत होने दो। जो आत्मिक शक्ति उद्वेग पैदा करना चाहती है उसे क्रिया-शक्ति में, कठोर कर्मठता में परिवर्तित कर दो। फिर उसी झल्लाहट से वह उद्वेग और भी प्रकट हो गया-सा जान पड़ता, और सत्य जरा तेजी से टहलने लग जाता······

विस्तृत हरियाली के परले पार से एक आदमी निकल कर सत्य की ओर आ रहा था। जब वह सत्य के बिलकुल निकट आ गया, तब सत्य ने धीरे से कहा;—"कहिए"—और फिर दोनों बाँह में बाँह डाले एक घने छायादार वृक्ष की ओर चल पड़े।

"क्या-क्या समाचार हैं ?"

सत्य जल्दी-जल्दी अपनी बात कहने लगा। समाचार उसके पास अधिक नहीं थे, लेकिन इस मितभाषी, प्रचण्डकर्मा नेता चूड़ामणि के प्रति उसमें इतनी श्रद्धा थी कि उसके प्रत्येक आदेश को वह एक साँस में ही पूरा कर डालना चाहता था। अभी उसकी कोई बात पूरी नहीं हुई थी कि चूड़ामणि ने उसे टोक कर शान्त किन्तु फिर भी न जाने क्यों अधिकार भरे स्वर में कहा—"अच्छा; मेरे पीछे पुलिस है। मेरे यहाँ होने का तो पता था ही, आज एक आदमी ने शायद पहचान भी लिया है। पुराना दोस्त था। कुछ गड़बड़ हो सकती है।"

सत्य ने अचकचाकर कहा—"तो—?"

"मैं उसके लिये तैयार हूँ। तुम हो कि नहीं ? तुम्हें अभी यहाँ से निकल जाने के लिये तैयार होना चाहिए।"

एकाएक सत्य को लगा कि पार्क में कहीं कुछ शंकनीय बात है। अकारण ही उसके मन में घिर गये होने का, थोड़ी-सी घबराहट का भाव उदित हुआ। जो लोग खतरे में रहते हैं वही इस तर्कातीत भावना को समझ सकते हैं—बल्कि वे भी सदा नहीं समझते। सत्य भी नहीं समझ सका कि वह ऐसा शंकित और आतंकित क्यों हो उठा है। उसने अनिश्चित स्वर में कहा,—

'मुझे शक होता है कि कुछ गड़बड़ है—"

चूड़ामणि स्थिर दृष्टि से हरियाली के पार तीव्र गति से पेड़ों के झुरमुट की ओर जाते हुए एक मानवी आकार की ओर देख रहे थे। आँखे उधर गड़ाये हुए ही बोले,—"तुम्हें शक है, मुझे निश्चय है। उस आदमी को मैं जानता हूँ। अभी पाँच मिनट के अन्दर कुछ होगा। इधर आओ।"

चूड़ामणि उठकर पेड़ के तने की ओट में हो गये। सत्य भी पीछे-पीछे हो लिया। इस तरफ़ पेड़ के पीछे एक पत्थरों की दीवार थी, दीवार के दूसरी ओर एक खाई जिसमें बरसाती पानी भरा हुआ था।

चूड़ामणि ने कहा—"अभी जो कुछ होने वाला है, उससे चौंकना मत। उसका सम्बन्ध मुझसे है—मुझी से है। तुम सुनो, तुम्हें क्या करना है और सुनकर जाओ। यहाँ से—"

तभी सीटी बजी ; एक बार; दूसरी बार कुछ अधिक तीखी, फिर एक साथ कई सीटियाँ—वातावरण मानों अनेक साँपों की फुफकार से सजीव होकर चीख उठा हो !

चूड़ामणि ने अपने कपड़ों के भीतर से दो रिवाल्वर निकाले और दोनों के चेम्बर जाँचकर सन्नद्ध होकर बैठ गये।

सत्य ने देखा, सामने एक झुरमुट की आड़ में तीन चार

व्यक्ति—छिपी-छिपी, दीख न सकने वाली, किसी छठीं इन्द्रिय से जानी जानेवाली गति—फिर इस्पात की नीली-सी चमक······

"मेरे ठीक पीछे खड़े रहो—पेड़ से इधर उधर न होना।"

सत्य ने आज्ञा का पालन किया। सर्राती हुई एक गोली उसके पास से निकल गई।

"ठीक। शुरू है।"

एक और गोली। फिर एक साथ सनसनाती हुई कई गोलियाँ।

"अब मेरी बारी है।"

एक !

दो !

तीन !

दूसरी ओर से कराहने की आवाजें, और उसके बाद गोलियों की तीव्र बौछार।

"लो और।" चूड़ामणि ने भी तीन चार फायर और किये।

"लो इसे भरो।" रिवाल्वर सत्य को थमाकर वे दूसरे रिवाल्वर से निशाना साधने लगे।

"हाँ सुनो। तुम्हें यहाँ से सीधे कानपुर जाना होगा। वहाँ विश्वनाथ से मिलो। उसे एक पत्र देना है—मेरी बाईं जेब से निकाल लो और कहना है कि इसमें दी हुई हिदायतों के अनुसार वह काम करे। पते भी इसी पत्र में दिये हुए हैं। पढ़ने की विधि वह जानता है।"

दो-एक गोलियाँ चलाकर वे फिर कहने लगे—"वहाँ से फिर यहाँ लौटकर आना—पर बहुत जल्दी नहीं, और गरिमा से मिलना। उसे मैं कह आया था कि जब तक मेरा आदेश न हो, यहाँ से टले नहीं। और अब—अब मैं आदेश देने नहीं जा

सकूँगा।" उनकी हँसी बिल्कुल खोखली थी। "उसे कहना कि यहाँ से टल जाय– लेकिन तुम उसे पहचान तो लोगे न? एक ही बार देखा है—"

"हाँ।" सत्य को याद आ गया। गरिमा चूड़ामणि की बहन थी और विधवा थी। उसका पति चूड़ामणि के क्रान्तिकारी दल की ओर से किसी आक्रमण की तैयारी में अकस्मात विस्फोट हो जाने से मर गया था। वही उस आक्रमण का नेता था, इसलिये उसकी आकस्मिक मृत्यु से सबके हौसले पस्त हो गये थे। लेकिन गरिमा ने कहा—"उनका काम मैं पूरा करूँगी। और उनके चले जाने से लोगों के हौसले टूट जायँगे, तो—तो मैं उनकी मृत्यु को अत्यन्त गुप्त रखूँगी। उसका किसी को पता भी न लगेगा। मैं अपने मन, वचन और कर्म के जोर से लोगों के सामने उन्हें जीवित रखूँगी। आप लोग इसमें मेरी सहायता करें।"

सत्य ने गरिमा को केवल एक बार देखा था—पति के देहान्त के अगले दिन प्रातःकाल के समय। उस समय वह स्नान के उपरान्त एक ऐसा काम कर रही थी जिसके एक क्रान्तिकारिणी द्वारा किये जा सकने की बात सत्य ने कल्पना में भी नहीं देखी थी—वह माँग में सिन्दूर भर रही थी। सत्य ने जब जाकर उससे अपना सन्देश कहा था तब वह मुस्करा भी सकी थी······

"पहचान लूँगा" एक ही बार देखा है, पर वैसे दो बार दीखता कौन है? लेकिन—"

"क्या?"

"लेकिन यदि मैं पहुँच न सका तो?"

"सकना क्या होता है? मैं कहता हूँ कि पहुँचना होगा, तो पहुँचना होगा। तुम्हें नहीं, मेरे सन्देश को। होना, न होना,

सम्भव होना, यह आदमियों के साथ, जीवन के साथ है। कर्त्तव्य के साथ एक ही बात होती है—होना। चाहे किसी तरह; किसी के हाथ।"

गोलियों की बौछार फिर हुई !

"अच्छी बात; तो गरिमा से कह देना। यदि वह न माने कि तुम मेरा सन्देश लेकर आये हो, तो उसे याद दिलाना कि हरनौटा गाँव के पास उसने मेरी बाँह पर पट्टी बाँधी थी तो उसमें एक फूल भी बाँध दिया था। और वह फूल—"फिर गोलियों की तीखी बौछार हुई। चूड़ामणि ने धीरे-धीरे निशाना साधकर उत्तर दिया। दूसरी ओर से फिर बौछार हुई। लेकिन गोलियों का शोर कराहने की आवाजों को छिपा न सका।

"इसे भरो—वह मुझे दे दो !"

सत्य चुपचाप दूसरे रिवाल्वर में कारतूस भरने लगा।

"और कितने राउण्ड हैं ?"

"बाईस।"

"दस अलग करो।"

अनैच्छिक क्रिया से चलती हुई गोलियों के धड़ाके गिनते हुए सत्य ने चूड़ामणि की आज्ञा का पालन किया। गोलियाँ चलती रहीं। दूसरी ओर से फिर कराहने का स्वर आया और उसके बाद एकाएक गोलियों की तीखी उत्क्रुद्ध बौछार······

"हूँ। किसी अफसर के गोली लगी है।"

"कैसे ?"

"देखते नहीं, कैसा क्रुद्ध और बेअन्दाज फायरिंग हो रहा है ?"

"हूँ।"

क्षणभर की नीरवता, जिसे एक-आध गोली ने जरा-सा कँपा-सा दिया।

"इसे भरो। बाकी चार राउण्ड अपनी जेब में डाल लो।"

सत्य ने वैसा ही किया।

"बाकी बारह मेरे आगे रख दो"

यन्त्र चालित-से सत्य ने यह आदेश भी पूरा किया।

"अब तुम्हारे जाने का वक्त आ गया—जाओ! उफ।"

एक गोली चूड़ामणि की दाहिनी बाँह में कलाई से कुछ ऊपर लगी थी।

यह तो ठीक नहीं हुआ। खैर। उन्होंने दूसरा हाथ सत्य की ओर बढ़ाया। "वह भरा रिवाल्वर मुझे दो–यह खाली और कारतूस तुम ले जाओ—भागते-भागते भर लेना।"

"पर—"

इसकी अनसुनी करते हुए चूड़ामणि ने कहा—"यहाँ से पेड़ की आड़ रखते हुए ही दीवार के पास जाओ—वहाँ झाड़ी में झुककर गोली की मार से बाहर हो जाना। बस, फिर दौड़ना—निकल जाओगे।"

"पर आपको छोड़कर—"

"जाओ। कारतूस थोड़े हैं और मेरा बाँया हाथ है। जाओ—मैं कहता हूँ—चले जाओ।"

सत्य अत्यन्त अनिच्छापूर्वक हटने लगा। झाड़ी के पास पहुँचकर उसने लौटकर देखा। रिवाल्वर में कारतूस भरते समय चूड़ामणि के एक और गोली लगी थी।

"भइया, प्रणाम।" भर्राई हुई आवाज में सत्य ने पुकारा।

"हूँ। अभी यहीं हो? मेरा आखिरी फिल (Fill) है।"

सत्य दीवार के नीचे पहुँच गया। अब उसे दौड़कर गोलियों की मार से बाहर निकल जाना ही शेष था। दौड़ने से पहले उसने एक बार फिर लौटकर देखा।

"गये ?" चूड़ामणि एकाएक पेड़ की आड़ में से निकलकर खुले में आ गये थे, निशाना साधकर गोली चलाते हुए आगे बढ़े जा रहे थे।

कराहने की आवाजें—उसके ऊपर चूड़ामणि का कृतनिश्चय से गूँजता हुआ स्वर—"और लो। और लो। और लो। सिर्फ आखिरी राउण्ड मेरा है।"

चीखें। कराहने का स्वर। फिर और तीखी दर्द-भरी चीखें। सत्य दौड़ा।

"और गरिमा से कहना वह फूल अभी तक मेरे पास है।" भागते हुए सत्य ने गोली का एक दबा हुआ-सा स्वर सुना, मानों नली शरीर के बहुत नजदीक रखकर रिवाल्वर चलाया गया हो। उसके बाद गोलियों की लगातार कई मिनट की तीखी बौछार......

फिर सीटियाँ, तीखी, कर्कश सीटियाँ...और खाई का एक छोटा-सा पुल, फिर सड़क का एक मोड़, और फिर नीरवता!

एकदम अखण्ड नीरवता—केवल उसके पैरों का 'धम्-धम्', और उसके हृदय का 'धक्-धक्' स्पन्दन......

× × ×

सीटी फिर बजी, तीखी और कर्कश।

जितना ही सत्य का शरीर अवश जड़ित होता जाता था, उतना ही उसका मन अवश गति से दौड़ रहा था......

गरिमा की आँखें कैसी थीं ? गति नहीं थी, ज्योति नहीं थी—थी एक भीषण जड़ता, एक सहसा रोमाञ्चित कर देनेवाली

प्राणहीन स्थिरता। और वह वैसे ही निष्प्राण स्वर से सत्य की कही हुई बात का एक एक वाक्य उसके पीछे दोहराती जा रही थी—एक अबोध पक्षी की तरह जिसे बोलने को जबान तो है लेकिन समझने को मस्तिष्क नहीं। 'पट्टी बाँधी थी, तो एक फूल भी बाँध दिया था।' हाँ, बाँध दिया था। 'कहा था, मेरे आदेश के बिना कहीं मत जाना।' हाँ, कहा था। 'उससे कहना, वह फूल अभी तक मेरे पास है।' 'आखिरी राउण्ड······'

हाँ, जब सत्य को जान पड़ा था कि अगर गरिमा कुछ देर भी और ऐसी ही रही, तो वह या अपना सिर फोड़ लेगा या उसे मार डालेगा—इतनी अमानुषी थी वह परिस्थिति—तभी उसकी आँखों में एक आँसू आया था। एक ही आँसू—दूसरा नहीं आया था, और पहला आँख से टपका नहीं था। लेकिन दुबारा उसने कहना चाहा था, 'राउण्ड मेरा है', तब उसकी आवाज बदल गई थी, टूट गई थी—

आज एक साल बाद भी क्यों वह आँसू भरी आँख—

सीटी फिर बजी। अबकी बार सत्य के बहुत ही निकट। इतने निकट की उसकी घबराहट दूर हो गई, हाथ-पैर काँपने बन्द हो गये, उसने आँखें खोलीं कि अब तो वह घिर ही गया, उसकी बारी आ ही गई; क्या हुआ एक साल बाद आई तो—क्या हुआ ऐसे घटनापूर्ण खिंचाव भरे एक साल बाद आई तो।

लेकिन आज एक साल बाद भी क्यों वह आँसू भरी आँख—

× × ×

एक छोटा-सा लड़का सत्य के आगे खड़ा था। उसके हाथ में चमकता-सा कुछ था—

सत्य को एकाएक लगा कि वह बेवकूफ है—पहले दर्जे का बेवकूफ; बज्र मूर्ख है—उसने हँसना चाहा लेकिन हँसी उसके

गले के भीतर ही सूख गई। अपने आपको और भी अधिक बेवकूफ अनुभव करते हुए अटकती हुई जबान से किसी तरह कहा,—ओ बच्चे तुम—तुम···"

बच्चे ने सीटी मुँह में डालते हुए सन्देह भरे स्वर में पूछा,—"क्या तुम-तुम ?"

इलाचंद्र जोशी

[जन्म सन् १९०२ ई०]

चिट्ठी-पत्री

जोशी जी का जन्म अल्मोड़े में हुआ। स्कूली शिक्षा हाई स्कूल तक मिली है, पर आपने अपने अध्यवसाय से हिन्दी के अतिरिक्त अंगरेजी, बंगला और संस्कृत का भी गंभीर अध्ययन किया है। फ्रेंच और जर्मन के भी जानकार हैं। जोशी जी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और कवि हैं। आपने उपन्यास, कहानी, कविता और आलोचनात्मक निबंध—सबकुछ लिखा है। आपकी कहानियों और उपन्यासों में पात्रों और परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। आपने कई पत्रों का सफलतापूर्वक संपादन किया है। इस समय इलाहाबाद के लीडर प्रेस से निकलने वाले 'संगम' पत्र के सपादक हैं। 'धूपलता' 'रोमांस की छाया' 'डायरी के नीरस पृष्ठ' 'खँडहर की आत्माएँ' आदि आपके प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं।

'चिट्ठी-पत्री' पत्रात्मक शैली में लिखी गई कहानी है। इसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा अनमेल विवाह का दुष्परिणाम दिखाया गया है। अतृप्तकाम व्यक्ति किस प्रकार अपने को ही छलने का उपक्रम करता है, अपने अभिमान के भाव की तुष्टि अज्ञात रूप में वह किस प्रकार नाना रीतियों से करना चाहता है, दमित इच्छायें और दीर्घकालव्यापी मानसिक पीड़न मनुष्य के जीवन में कितने घातक

रूपमें उपस्थित होते हैं—आदि अनेक मनोवैज्ञानिक निष्कर्षों का परिचय इस रचना में मिलता है।

इस कहानी में पत्रों को इस ढंग से नियोजित किया गया है कि कथा सम गति से आगे बढ़ती चली जाती है। उसमें कहीं व्याघात नहीं पड़ता। पाठक की उत्सुकता भी बहुत-कुछ अंत तक बनी रहती है। उसका मन घटनाओं की रहस्यात्मकता में नहीं उलझता। घटनाओं के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की ओर लेखक की दृष्टि भी नहीं है। वह चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है मन के रहस्यों का विश्लेषण करके। कहानी-कला की दृष्टि से इसमें लेखक को कितनी सफलता मिली है, यह पाठक स्वयं विचार करें।

चिट्ठी-पत्री

मुरादाबाद, ३ अक्टूबर

प्यारी बहन,

आज मेरा जी कुछ उचाट-सा है। पास में कोई काम इस समय न होने से तुम्हें पत्र लिखने की इच्छा हुई है। जीवन की बहुत-सी पिछली बातें याद आ रही हैं। ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे तुम से और अपने विगत जीवन की संगिनी, दूसरी लड़कियों से मिले हुए कई युग बीत चुके हों। मुझे ससुराल आये केवल दो ही महीने हुए होंगे, पर इतने ही अर्से में सारा पूर्व जीवन स्वप्न की अस्पष्ट छाया की तरह मालूम पड़ने लगा है। तुम निश्चय ही मन ही मन मुस्करा रही होंगी और कहती होंगी—"मैं तो पहले ही कह चुकी थी कि ससुराल की हवा लगते ही तुम्हारा ढचर ही बदल जायगा और इस जगत् की बात भूलकर दूसरे ही संसार में विचरने लगोगी!" ठीक है, बहन, तुमने ठीक ही कहा था। वास्तव में मेरी दुनिया ही बिलकुल बदल गई है, और यही कारण है कि आज कुछ समय के लिए तुम्हारी दुनिया की याद आने से तुम लोगों के प्रति मैं एक ऐसे मोहक आकर्षण का अनुभव कर रही हूँ, जैसा पहले कभी नहीं किया था। यह जीवन एक स्वप्न नहीं है, जैसा कि अक्सर लोग कहा करते हैं, बल्कि इसके स्तर-स्तर में नानाप्रकार के विचित्र रंगीन तथा भौतिक स्वप्नों का जाल बिछा हुआ है। आश्चर्य यह है कि एक स्तर के स्वप्नों से दूसरे स्तर के स्वप्नों का कोई संबंध, कोई संयोजक कड़ी कहीं नहीं दिखाई देती। यह

एक बात ऐसी है, जो सबसे अधिक अनोखी और कभी-कभी आतंकजनक मालूम होती है।

खैर, इन सब फालतू बातों को जाने दो। तुम अवश्य यह जानने के लिए उत्सुक होगी कि ससुरालवालों के साथ मेरी कैसी बनती है। मेरी ससुराल के लोग सब सुशिष्ट हैं। इनका वंश कुलीन होने से इन्हें अपने कुल की मर्यादा की रक्षा का बड़ा ख्याल रहता है, इसलिए कभी-कभी कुछ कड़ाई इनके व्यवहार में पाई जाती है। पर वास्तव में यह कड़ाई इन लोगों की गौरव-शीलता का द्योतक है, और मैं भलीभाँति समझती हूँ कि मेरे प्रति इन लोगों के मन में यथेष्ट स्नेह का भाव वर्तमान है। जब कभी इस विषय में कुछ कमी पाई जाती है तो मैं निश्चित रूप से समझ लेती हूँ कि इसमें मेरा ही दोष है।

बहन, मुझे एक नया अनुभव ससुराल में हुआ है। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे सामाजिक विचारों में अब मूलतः परिवर्तन होने लगा है। मेरे मन में यह धारणा दृढ़ रूप से जमने लगी है कि अंग्रेजी शिक्षा भारतीय समाज की शान्ति और शृंखला में अशान्ति और पारस्परिक वैमनस्य बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं पहुँचा रही है। तुम्हें और भी आश्चर्य यह मालूम करके होगा कि मैं पर्दा-प्रथा की कट्टर पक्षपातिनी हो उठी हूँ और पर्दे को नारी के सबसे आवश्यक तथा सबसे सुन्दर शृंगार के बतौर मानने लगी हूँ। एक जूनियर कैम्ब्रिज-पास लड़की को इस प्रकार का सुधार-प्रतिपन्थी मत प्रकट करते देखकर तुम्हारा चकित रह जाना स्वाभाविक है। पर विश्वास रक्खो, मैं अपने गहरे अनु-भव से यह बात कह रही हूँ।

उस रोज लाला बृजमोहनलाल के लड़के के विवाह में मैं घर की दूसरी स्त्रियों के साथ गई हुई थी। वहाँ नई दुलहिन को देखा।

वह घूँघट काढ़े हुए थी और नई लाज के कारण बड़ी शालीनता के साथ सिर झुकाये बैठी थी। उसे छूते ही मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा और किसी अज्ञात कारण से अपूर्व श्रद्धा और स्नेह का भाव हृदय में उमड़ उठे। घूँघट में यह कौन-सी भेदभरी शक्ति है जो दूसरों को बरबस अपनी ओर खींच लेती है? मैं ठीक कह नहीं सकती, पर चुम्बक का-सा अज्ञात आकर्षण मैं इसमें पाती हूँ। उस समय मुझे उस नव-विवाहिता लड़की पर ईर्ष्या होने लगी, जिसने सारे महिला समाज की श्रद्धा तथा पुलक-भरे स्नेह का भाव अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। मैं सोचने लगी—"काश कि मैं भी इसी प्रकार घूँघट काढ़कर सलज्ज और सुमधुर नम्रता के भाव से सारे वायुमण्डल को छा देती?" मुझे पूरा विश्वास है कि विवाह के बाद जब मैं प्रथम दिन निरावरण अवस्था में ससुरालवालों के सामने बेहयाओं की तरह बेपर्दा खड़ी हुई तो दर्शकों में से किसी की अन्तरात्मा ने मुझ पर वह स्नेहपूर्ण मंगलमय अशीर्वाद नहीं बरसाया, जैसा स्वयं मैंने तथा मेरे साथ की दूसरी स्त्रियों ने उस घूँघटवाली नव-वधू पर वर्षित किया। और उस आशीर्वाद का कितना बड़ा महत्त्व इस समय मेरे लिए है, यह बात शायद तुम न समझ सकोगी, बहन! क्योंकि भगवान की कृपा से तुम्हें उस संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा, जिसने मेरा सारा जीवन-चक्र ही पलट डाला है।

मैं कितना चाहती हूँ कि भारतीय समाज के सनातन आदर्शों को पूर्ण रूप में अपना लूँ; पर जिन संस्कारों से मेरा जीवन गठित हुआ है उनके कारण क्या ऐसा होना अब सम्भव है? फिर भी मैं अपनी ससुरालवालों की कृतज्ञ हूँ कि वे मुझ जैसी बेमेल स्त्री की बहुत-सी ऐसी बातों को सहन कर लिया करते हैं, जो उनके दृष्टिकोण में अक्षम्य हैं।

मुन्नू की कुशल लिख भेजना। जिस दिन मैं ससुराल के लिए रवाना हुई थी, उस दिन वह जिस तरह बिलख-बिलख कर रोया था, वह तुमने भी देखा था। तुम जानती हो, मुझे छोड़कर वह अपने मन की बात यदि किसी व्यक्ति से कह सकता है तो वह व्यक्ति केवल तुम हो। पिता जी उसके मन की बात कभी नहीं जान सकते और माता जी—वे सहृदय अवश्य हैं, पर उनके स्वभाव से तुम परिचित ही हो। इसीलिये कहती हूँ बहन, कि उसकी खबर लेते रहना। शेष फिर।

तुम्हारी—

प्रमीला

× × ×

इलाहाबाद, १५ अक्टूबर

बहन प्रमीला,

तुम्हारा पत्र मिला। यह न समझना कि तुम्हारी मालती निरी मूर्ख है। तुमने अपने पत्र में अपनी ससुरालवालों की तारीफ के जो पुल बाँधे हैं, उनसे उनकी योग्यता का परिचय उतना नहीं मिलता, जितना तुम्हारे हृदय की दुर्बलता और इच्छा-शक्ति के अभाव का पता चलता है। निस्सन्देह यह आश्चर्य की बात है कि तुम अंग्रेज छोकरियों के साथ शिक्षा पाने के बाद भी पर्दा-प्रथा का गुणगान करने लगी हो। शायद तुम यह सोचती हो कि तुम्हारा हृदय सचमुच पर्दा-प्रथा की महत्ता स्वीकार करने लगा है।.पर यह निरा ढोंग है। तुम्हारा अभिमानी हृदय नाना सांसारिक तथा सामाजिक चक्र में दलित और पिष्ट होकर अन्त में अपने आपको ठगना चाहता है और नम्रता, दैन्य और विनय की चरम सीमा को पहुँच कर अपने अभिमान के भाव की तुष्टि करना चाहता है।

पर मुझे यह दीनता तनिक भी पसन्द नहीं है। मुझे प्रसन्नता तब होती, जब तुम उस अत्याचारी समाज के प्रति विद्रोह का भाव बनाये रहतीं, जो तुम्हें अपने लौहयंत्र में इस निर्दयता से पीस रहा है। मैं जानती हूँ कि तुम्हें इतने अधिक विरोधों का सामना करना पड़ा है कि अन्त में तुम्हारे मन ने विद्रोह की लेश-मात्र भावना को भी तिलाञ्जलि देकर अपने को पूर्णतया समाज की बलिवेदी पर समर्पित कर देना चाहा है। काश कि मैं तुम्हारे स्थान पर होती। मैं स्वयं मरती भी तो अत्याचारियों को भी अपनी विद्रोहाग्नि से झुलसा-झुलसा कर मारती। पर तुम्हें विद्रोह की अपेक्षा सांसारिक यश बहुत प्रिय है और लौकिकता के खिलाफ एक पग भी इधर-उधर चलने का साहस तुम में नहीं है।

तुम्हारे ससुरालवालों के अत्याचार की कहानियों से मैं बहुत-कुछ परिचित हूँ। इसलिए तुम्हारे उन्हें छिपाने की लाख चेष्टा करने पर भी मुझसे तुम्हारी कोई बात छिपी नहीं रह सकती, यह बात याद रखना। तुम स्वयं प्रयत्न करने पर भी असलियत छिपाने में असमर्थ सिद्ध हुई हो। तुम्हारी बातों को पढ़कर मुझे दुःख जो कुछ हुआ सो हुआ ही, पर उससे अधिक तुम्हारी कमजोरी और अबलापन के भाव पर क्रोध आया।

मुन्नू अच्छा है। पर जब से तुम गई हो, तब से वह ऐसा उदास रहा करता है कि उसका चेहरा देखते ही मेरे हृदय में हाहाकार-सा मचने लगता है। उस दिन सन्ध्या को उसके पास गई और उसका हाल पूछने लगी। उसे दिलासा देने की चेष्टा करते ही वह मेरे अंचल में अपना मुँह छिपा कर चुपचाप रोने लगा और टप-टप आँसू गिरने लगा। वह ऐसा अन्यमनस्क हो उठा है कि तिमाही इम्तहान में फेल हो गया, जिसकी वजह से तुम्हारे पिता जी ने उसे खूब पीटा और विमाता जी ने (माफ करना, पर मैं

उन्हें 'माता जी' कहकर आवश्यकता से अधिक श्रद्धा प्रकट करने में असमर्थ हूँ।) भी बहुत कुछ बुरा-भला कहा। तुम्हारे जाने के बाद दोनों ने बेचारे को पीटने और डाँटने की मात्रा बहुत बढ़ा दी है। मुझे उस पर बहुत तरस आता है। पर लाचार हूँ, कभी-कभी दिलासा देने के अलावा और कुछ नहीं कर पाती। केवल यही भरोसा है कि भगवान् उसकी रक्षा करेंगे। तुम्हें अधिक दुःख नहीं देना चाहती इसलिये पत्र यहीं पर समाप्त करती हूँ।

× × ×

तुम्हारी स्नेहपात्री—
मालती

पुनश्च—

तुम्हारा पत्र मैंने सरयू भैया को दिखाया था। उनके सम्बन्ध में तुमने पत्र में एक शब्द भी नहीं लिखा था, इसलिए उन्हें अवश्य ही दुःख हुआ होगा। क्या उन्हें इतनी जल्दी भूल गईं ?

× × ×

मुरादाबाद, २ दिसम्बर

बहन मालती,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों के बाद मिला। धन्यवाद। प्रमीला के सम्बन्ध में तुमने पूछा है कि ससुराल में उसके दिन आनन्द-पूर्वक कट रहे हैं या नहीं उसका हाल कुछ न पूछो, बहन! उसका बहुत बुरा हाल है। मुझे उस बेचारी के अन्धे और निर्दयी पिता पर बड़ा क्रोध आता है, जिन्होंने उसे अंग्रेज छोकरियों के स्कूल में शिक्षा देने के बाद ऐसे कुसंस्कारों से घिरे हुए, दकिया-नूसी ख़यालातों वाले घराने में ब्याह दिया है। समाज और कुल का ख्याल करके उन्होंने लाड़-प्यार से पली हुई गाय को इस कटघरे में डाल दिया है। उफ! तुम उस अत्याचार की कल्पना तक नहीं कर सकतीं, जिसका शिकार वह बनी हुई है। कटघरे

के पशु की हालत भी उससे कहीं बेहतर होगी। उसकी बेपर्दगी के लिए सारा परिवार उस पर बिगड़ा हुआ है। पर केवल पर्दे का अभाव ही उन लोगों की नाराजगी का कारण नहीं है। प्रमीला में 'तिरियाचरित्र' का एकदम अभाव होने और उसके स्वभाव के सरल निष्कपट सौजन्य के कारण भी ससुराल वाले उससे सब समय असन्तुष्ट रहते हैं। घर की स्त्रियाँ, बच्चे और बड़े-बूढ़े सभी उसे बात-बात में कोसते रहते हैं, ताने कसा करते हैं, और (लिखते हुए दुःख होता है) ऐसे असम्भव और भद्दे कलंक उस पर लगाते हैं कि कोई दूसरी स्त्री कभी विष खाकर मर गई होती। पर इस अनोखी लड़की में विधाता ने न-मालूम पृथ्वी माता की तरह कैसी अपार सहनशीलता दी है कि नीम की घूँट की तरह सबकी कड़वी से कड़वी बातें बेमालूम पी जाती है। उसका भीतर भले ही गन्धक की-सी आग से जलता हो, पर बाहर उसके मुख पर सब समय अटल शान्ति झलकती रहती है। तुम कहती हो वह जूनियर कैम्ब्रिज पास है। आश्चर्य है, इस बात पर विश्वास नहीं होता। बहन, आज-कल की अंग्रेजीदाँ लड़कियों से उसके स्वभाव में रंचमात्र भी समता नहीं पाई जाती। आधुनिक नारी के स्वभाव का तीव्र विद्रोहात्मक भाव उसकी आत्मा में अणुमात्र भी वर्तमान नहीं है। समझ में नहीं आता कि उसकी इस आश्चर्यजनक सहन-शीलता की प्रशंसा की जाय या निन्दा। कभी इस बात के लिए उस पर बड़ा क्रोध आता है और कभी अपार श्रद्धा से उसके आगे हृदय झुक जाता है।

एक दिन मैंने उसे न्योता देकर बुलाया। उसे जब मालूम हुआ कि तुम मेरे मामा की लड़की हो तो परम स्नेह से गले मिली और मेरी दो-चार बातों से उसके धीरज का सब बाँध टूट

पड़ा। वह सिसक-सिसक कर बेअख्तियार रोने लगी। मेरी भी आँखों से बरबस आँसू निकल आये।

मैं अपने जासूसी चक्करों से उसके ऊपर किये जानेवाले अत्याचारों का सब हाल मालूम किये रहती हूँ। पर उस दिन उसने एक नई बात सुनाई। उसका एक जेठ है, जो वर्षों से बीमारी की हालत में पड़ा हुआ है। चूँकि वह कमाऊ नहीं है इसलिए इस परिवार के ढाई कुल-भूषण पुरुष तथा स्त्रियाँ उसकी लम्बी बीमारी से उकता गई हैं और उसकी तरफ से प्रायः उदासीन-सी रहा करती हैं। किसी को उस अभागे मरीज की सेवा का ध्यान नहीं है। प्रमीला से यह बात न देखी गई। वह वक्त-बेवक्त कभी उसे गरम दूध दे आती, कभी उसका पीकदान साफ कर लाती, कभी उसका बिस्तरा ठीक तरह से बिछाकर उसके आराम से लेटने का उपाय कर देती। वह बेचारा खाँसता और कराहता हुआ उसे आन्तरिक आशीर्वाद दिया करता। प्रमीला की यह 'हरकत' न तो उसके बुड्ढे और शराबी ससुर से देखी गई, न उसकी सास और ननदों से। चारों ओर से उस पर बेहूदा व्यंग से बुझे हुए ऐसे कठोर वाक्य-बाणों की वर्षा होने लगी कि सभ्य समाज में उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

तुम निश्चय ही उसके पति का हाल पूछना चाहती होगी और तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा। कि मैंने पत्र के प्रारम्भ में ही उसके पति का उल्लेख क्यों नहीं किया। यदि उसके सम्बन्ध में मुझे तनिक भी सन्तोष होता तो मैं अवश्य ही पहले उसका उल्लेख करती, पर सारा दुःख तो इसी बात का है कि पति का अत्याचार उस पर किसी से कुछ कम नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि वह 'हिन्दू-कुल-

तिलक' और अपने माता-पिता का परम भक्त है। पर इसी कारण अपनी निस्सहाय पत्नी पर उसका अत्याचार भी सबसे अधिक प्रबल है। वह अपने समाज और परिवार को यह दिखाना चाहता है कि उसकी जिस पत्नी से उसके माता-पिता नाराज रहते हैं, उससे वह उनसे भी अधिक घृणा करता है; क्योंकि ऐसा करना हिन्दू धर्म के अनुसार उसका परम कर्त्तव्य है।

बहन, इस नराधम पति की बात तुमसे क्या कहूँ। तुम्हें सुनकर मार्मिक कष्ट होगा। उस रोज उसके शराबी पिता प्रमीला के ऊपर सुबह से ही बेतरह बिगड़े हुए थे। कारण ? कारण कुछ भी नहीं। इस मकान में अकारण ही सब घटनाएँ घटा करती हैं। पिता के परम भक्त पुत्र ने अपनी भक्ति का परम प्रमाण देने के उद्देश्य से निरपराधिनी प्रमीला को एक ऐसी लात जमाई कि वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी और चारों खाने चित लेट गई ! जो मानसिक वेदना उसे पहुँची होगी उसके आगे शारीरिक पीड़ा नगण्य है। तथापि तुम्हारी प्रमीला ने मुँह से 'उफ' तक न निकाला और चुपचाप उठकर अपने पलंग पर जाकर लेट गई। सुनती हूँ, तब से वह अभी तक नहीं उठी और बुखार भी उसे आ गया है।

उसके नर-पशु पति की उसपर नाराजी का एक और रहस्यमय कारण मैंने सुना है, जिसका उल्लेख करने से भी तुम्हारा रोआँ-रोआँ काँप उठेगा।

उस अभागिन के लिए दुखित रहने से कोई लाभ नहीं हो सकता, बहन ! स्त्री योनि में जन्म लेने से इस प्रकार के निर्यातन अनिवार्य हो उठते हैं। जूनियर कैम्ब्रिज पास स्त्री के लिये भी विधाता ने वे ही नियम बनाये हैं इसलिये भगवान् से तुम भी

प्रार्थना करो कि अगले जन्म में पुरुष बनकर जन्म लेना पड़े।

तुम्हारी स्नेहकांक्षिणी
जानकी,

× × ×

मुरादाबाद, ४ दिसम्बर

बहन मालती,

प्रमीला के जिस बुखार को मैं साधारण समझे थी, उसने उग्र रूप धारण कर लिया है। मैं उसे देखने गई थी। सारा मुँह तमतमाया हुआ था और आँखें अस्वाभाविक रूप से चमक रही थीं। पीड़ा से वह अत्यन्त व्याकुल जान पड़ती थी और अत्यन्त बेवस-सी होकर दीन भाव से कराह रही थी। मुझे देखते ही उसकी आँखें डबडबा आईं। उसे अधिक बोलने की शक्ति नहीं थी। मुझसे उसने बहुत हलकी और मुरझाई हुई आवाज में इशारे के साथ बैठने को कहा। डाक्टर ने उसकी बीमारी को न्यूमोनियाँ करार दे दिया है। यह एक आश्चर्यजनक काकतालीय है कि पति की लात की चोट से उसे बुखार आया और वही साधारण ज्वर न्यूमोनिया में परिणत हो गया! पर विधि का विधान विचित्र है। चलो अच्छा ही हुआ। यदि इस रोग से उसकी मृत्यु हो जाय तो मुझे दुःख बड़ा भारी होगा, पर साथ ही इस बात की तसल्ली भी होगी कि बर्बर पशुओं से भी अधम मनुष्यों के पंजों से उसे सदा के लिये छुटकारा मिल जायगा।

पतिदेव के मित्र डा॰ कैलाशनाथ को तुम जानती होगी। बड़े सज्जन और सहृदय पुरुष हैं। वही प्रमीला का इलाज कर रहे हैं। इसी वर्ष उन्होंने प्रैक्टिस शुरू की है, पर इतने ही अर्से में वह मुरादाबाद में काफी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनसे मैंने

पूछा था। वह प्रमीला की अवस्था को सन्देहजनक बताते हैं।

तुम्हारी
जानकी

× × ×

मुरादाबाद, ६ दिसम्बर

प्रिय सरयू,

तुम्हारा पत्र मुझे समय पर मिल गया था, पर कई झंझटों के कारण उसका उत्तर न दे सका। तुमने लिखा है कि···भाई, असल में बात यह है कि···

इधर मैं एक विचित्र रोगिणी के इलाज में व्यस्त हूँ। जाहिरा तौर पर वह न्यूमोनिया से पीड़ित है, पर मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि उसकी किसी गुप्त मानसिक पीड़ा ने इस बीमारी का रूप धारण किया है। मैंने उसके ज्वर का कारण मालूम करने की बहुत चेष्टा की पर कोई ठीक तरह से बता नहीं सका। सबने केवल यही कहा कि कल उसके पति ने जोरों से उसके लात जमाई थी, और इस घटना के कुछ ही देर बाद बुखार की हरारत शुरू हो गई। एक मनोवैज्ञानिक डाक्टर की हैसियत से मैं यह कहूँगा कि उसका दीर्घकालव्यापी मानसिक पीड़न पति की लात से चरमावस्था को पहुँच जाने के कारण उसके अज्ञात चेतन ने एक घातक रोग का आश्रय पकड़ लिया। तुम कहोगे कि इतनी घातक बीमारियों को छोड़कर उसने न्यूमोनिया का ही आश्रय क्यों पकड़ा। मनोविज्ञान इसका भी सन्तोषजनक उत्तर देने के लिए तैयार है, पर चूँकि मुझे इस समय अवकाश नहीं, इसलिए मैं इस विषय को अधिक तूल देने में असमर्थ हूँ।

मुझे उस स्त्री के 'बीस्ट' पति से ऐसी नफ़रत हो गई है कि जब वह मेरे सामने खड़ा होता है तो इच्छा होती है कि उसे तत्काल 'शूट' कर दूँ। पर अफसोस है कि मुझमें इतना नैतिक

साहस नहीं है। लड़की अंग्रेजी शिक्षा पाई हुई है और मैंने अपने मित्रों से सुना है कि स्वभाव और चरित्र में भी वह बहुत अच्छी है। और रूप ? उत्कट रोग की दशा में भी उसका जो सौंदर्य मैंने देखा, वैसा इस जीवन में शायद ही कहीं किसी का देखा हो। केवल शारीरिक सौंदर्य की बात मैं नहीं कह सकता। उसके चेहरे में एक ऐसा रहस्यमय तेज झलकते हुए मैंने देखा, जो अनुपम था।

उसका पशु-पति उस रोज अत्यन्त दीन भाव से डबडबाई हुई आँखों से, अपनी पत्नी के पलंग के पास बैठा था। मैं चाहता था कि उसके मुँह पर थूक दूँ। मैं समाज के इन दुष्ट कीटों के प्रति दया दिखाना घोर दुर्बलता समझता हूँ। पर मैं अत्यन्त आश्चर्य के साथ इस बात पर गौर कर रहा था कि रोगिणी बीच-बीच में अत्यन्त सदय और सकरुण भाव से इस नराधम की ओर देख रही थी। उसकी आँखों के भाव से यह स्पष्ट झलकता था कि उसने अपने घोर नीच पति को केवल क्षमा ही नहीं किया, बल्कि उसके पश्चात्ताप की हालत पर तरस खाती हुई वह उसके प्रति मंगल-कामना भी वर्षित कर रही है। डाक्टर खड़ा है, पर उसके प्रति उसका तनिक भी ध्यान नहीं है; लेकिन पति की दीनदशा उससे बिलकुल ही नहीं देखी जा रही थी ! मैं विस्मय-विमुग्ध होकर मन-ही-मन सोचने लगा—क्या यह लड़की सचमुच जूनियर कैम्ब्रिज पास है !

पत्र लिखते-लिखते मुझे एक आश्चर्यजनक प्रेरणा हुई है। मुझे याद है, लखनऊ में, होस्टल में तुम अक्सर एक लड़की की चर्चा हम लोगों से किया करते थे। जहाँ तक मुझे स्मरण है, उस लड़की का नाम भी प्रमीला था और मेरी रोगिणी का नाम भी वही है। तो क्या······नहीं भाई, यह बात सम्भव कैसे हो सकती है !

पत्र शीघ्र देना। अन्तिम बात के सम्बन्ध में मेरा कौतूहल बहुत बढ़ गया।

तुम्हारा वही कैलाशनाथ

× × ×

इलाहाबाद, ७ दिसम्बर

प्रिय कैलाशनाथ,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मेरी मानसिक दशा कुछ विचित्र सी हो उठी है। हाँ, यह अवश्य ही वही प्रमीला है, जिसकी चर्चा मैं तुम लोगों से किया करता था। तुमने पत्र में फालतू बातें बहुत लिखीं, पर यह नहीं लिखा कि उसके जीने की कोई उम्मीद है या नहीं; क्योंकि इस समय यही एक बात ऐसी है, जिसको जानना मेरे लिए सबसे जरूरी है। मेरी चचेरी बहन मालती के पास प्रमीला की बीमारी के सम्बन्ध में जो पत्र आये हैं, उनसे केवल यही पता चलता है कि बीमारी खतरनाक है। पर जीने की कोई आशा है भी या नहीं, मैं यह बात बहुत शीघ्र जानना चाहता हूँ। काश कि तुम्हारी तरह मैं भी उसके इलाज के लिए उपस्थित होता! यह बात मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मुझे तुम्हारी योग्यता पर विश्वास नहीं है। तुम जानते हो, मैं तुम्हारी योग्यता की कैसी कदर करता हूँ। पर तुम यह बात भी समझ सकते हो कि प्रमीला के जीवन के वर्तमान संकट-काल में मुझे उसके पास उपस्थित रहने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर क्या यह सम्भव है? प्रमीला के ससुरालवालों का जो हाल मैंने सुना है, उससे तो यह बात मुमकिन नहीं जान पड़ती कि वे लोग मुझे उसके पास जाने देंगे।

पत्रोत्तर लौटती डाक से देना ।

तुम्हारा—सरयू

× × ×

मुरादाबाद, ८ दिसम्बर

प्रिय सरयू,

तुम्हारा पत्र मिला । तुम यदि प्रमीला को देखने के लिए इस कदर उत्सुक हो तो फौरन चले आओ । मैं तुम्हें अपने सहकारी डाक्टर के बतौर वहाँ ले चलूँगा । इस बात पर किसी को भी एतराज नहीं हो सकता । उसकी हालत नाजुक होती चली जाती है, इसलिए तुम पत्र मिलने पर उसी दिन किसी गाड़ी से चले आना । विशेष बातें तुम्हारे आनेपर होंगी ।

तुम्हारा—कैलाशनाथ

× × ×

एक्सप्रेस तार, मुरादाबाद, ९ दिसम्बर

९ बज के ३५ मिनट

आज सुबह ७½ बजे प्रमीला की मृत्यु हो गई । अब तुम्हारा आना व्यर्थ है ।

कैलाशनाथ

× × ×

इलाहाबाद १० दिसम्बर

प्रिय कैलाश,

आखिर मेरे देखे बिना ही प्रमीला की मृत्यु हो गई ! मैं कौन ऐसा दैवी शक्तिशाली व्यक्ति था कि मृत्यु मेरा लिहाज करके दो-एक दिन ठहर जाती । पर कोई नहीं समझ सकता कि अन्तिम समय प्रमीला से एक बार भी न मिल सकने के कारण मेरी कितनी बड़ी हानि हो गई ! कुछ भी हो, इस घटना से मैं बड़ा भारी 'फैटेलिस्ट' हो गया हूँ । और विधि-विधान के रहस्य का महत्त्व स्वीकार करने लगा हूँ । खैर ।

प्रमीला की चर्चा मैं बीच-बीच में तुम लोगों से अवश्य किया करता था, पर तुम उन बातों से इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसने मेरे जीवन में कितना बड़ा स्थान अधिकृत कर रक्खा था।

वह मेरी चचेरी बहन मालती की बाल्यसंगिनी थी। बड़ी शान्त-स्वभाव और अत्यन्त संकोचशील थी। मैंने उसे कभी अपने जीवन में एक बार भी हँसते हुए नहीं देखा—वह इतनी गम्भीर थी! अवश्य बीच-बीच में विशेष-विशेष अवसरों पर उसके मुख में सलज्ज मुसकान की झलक दिखाई देती थी; पर हँसी—बच्चों की-सी बेधड़क हँसी—उसमें कभी नहीं पाई गई। वह बहुत कम बोलती थी और बहुत धीरे। कैसी ही संकटजनक अथवा उत्तेजक परिस्थिति क्यों न आ पड़े, पर उसे कभी जोर से बोलते नहीं सुना गया। वह इतना कम बोलती थी कि कोई गिनने वाला होता तो वह आसानी से मालूम कर सकता था कि वह प्रतिदिन कितने इने-गिने शब्द मुँह से निकाला करती है। मैं इन छोटी छोटी बातों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि उनसे उसकी रहस्यमयी प्रकृति का थोड़ा-बहुत परिचय तुम्हें प्राप्त हो सकता है। शान्ति, सौजन्य, सहृदयता, सरलता लज्जा तथा सरस गांभीर्य का अपूर्व समन्वय उसके चरित्र में पाया जाता था। तिस पर वह अद्‌भुत रूपवती थी, जिसके साक्षी तुम स्वयं हो और यथेष्ट शिक्षा-प्राप्त। यदि वह मेरी ओर कभी आँख उठा कर भी न देखती तो भी उसके इन मिश्रित गुणों का प्रभाव मुझ जैसे भावुक व्यक्ति के ऊपर पड़े बिना न रह सकता था। तिस पर मेरी अभिमानी आत्मा को यह सन्देह होने लगा था कि वह मेरे प्रति उदासीन नहीं है। स्मरण रहे, मैं 'सन्देह' कह रहा हूँ, 'विश्वास' नहीं; क्योंकि अन्त तक मैं उसके मन की यथार्थ बात मालूम न कर सका—उसके स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता

यह थी कि वह अपने मन की कोई भी बात किसी पर तनिक भी प्रकट नहीं होने देती थी—किसी घनिष्ठतम रूप से परिचित व्यक्ति से भी नहीं। मालती से अधिक घनिष्टता उसकी किसी से नहीं थी। कुछ समय तक मालती का यह विश्वास था (और इस बात पर बड़ा गर्व भी था) कि वह प्रमीला के मन की बहुत-सी बातें जानती हैं। पर पीछे उसका यह भ्रम दूर हो गया था। वह बाह्य संसार में विचरण करते रहने पर भी वास्तव में अपने अन्तर्जगत में ही विवास करती थी—जहाँ वह अवश्य ही निर्मुक्त और निर्द्वन्द्व विचरती होगी।

आज मुझे बहुत सोचने पर यह बात निश्चित रूप से प्रतीत हो रही है कि इस स्वार्थमय वास्तविक संसार में वह अपने को प्रवासिनी और विदेशिनी-सी समझती थी और यहाँ के प्रत्येक आदमी को शंका और सन्देह की दृष्टि से देखा करती थी कि न मालूम कौन कब उसके विरुद्ध कैसा षड़यंत्र रच बैठे ! अपने अन्तर्जगत् की वह रानी थी इसलिए वहाँ उसे किसी प्रकार का भय नहीं था। वहाँ वह अवश्य ही कुछ संगियों तथा संगिनियों के साथ खेला करती होगी, पर वे संगी कौन थे और संगिनियाँ कौन थीं, इस बात का पता विधाता को ही शायद लग सके।

उसकी माँ मर कर एक छोटे भाई की रखवाली का भार उसे सौंप गई थी। उसकी विमाता वैसी ही थी जैसा कि इस कुसंस्कारों से भरे हुए देश में विमाताओं को होना पड़ता है। उसके पिता के हृदय में अवश्य ही अपने बच्चों के प्रति स्नेह का भाव रहा होगा, पर वे स्नेह जताना नहीं जानते थे, वरन् उनके व्यवहार से विशेष कठोरता प्रकट होती थी। उसके एक चाचा थे, जो उसे और उसके भाई को जी-जान से चाहते थे। वे कलकत्ते में व्यापार करते थे और

वहीं से अपनी भतीजी और भतीजे के लिये प्रति मास आवश्यकता से अधिक रुपये, बढ़िया-बढ़िया कपड़े और दूसरी दामी चीजें भेजा करते थे। जब कभी वे इलाहाबाद आते या प्रमीला कलकत्ते जाती तो वह अवसर प्रमीला के लिये जीवन में सबसे अधिक आनन्द का होता। चाचा को वह सचमुच बहुत चाहती थी। उसके चाचा की ज़िद के कारण ही उसे अंग्रेज छोकरियों के स्कूल में पढ़ना पड़ा था, वर्ना उसका स्वाभाविक झुकाव भारतीय शिक्षा की ओर ही था। यही कारण था कि जूनियर केम्ब्रिज तक पढ़ने और अंग्रेज छोकरियों के संसर्ग में रहने पर भी उसके स्वभाव की भारतीयता में आँच भी नहीं आने पाई थी। यदि यह बात किसी अपरिचित व्यक्ति से कही जाय तो वह अविश्वास पूर्वक हँसेगा, पर तुम स्वयं प्रमीला के स्वभाव से बहुत कुछ परिचित हो गए हो।

पहले कह चुका हूँ कि मालती के पास वह आया-जाया करती थी। इसी सिलसिले में उसके साथ मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया था। पर यह केवल बाहरी परिचय था। उसके भीतर का परिचय मैं अन्त तक प्राप्त न कर सका, यद्यपि मुझे यह विश्वास है कि उसकी नीरव किन्तु मर्मभेदी दृष्टि मेरा भीतरी परिचय पा गई थी। वर्षों तक हेलमेल रहने पर भी उसने कभी मेरे साथ अधिक बातचीत न की। वह केवल मेरे प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर अत्यन्त नम्रता तथा सौजन्य के साथ दे दिया करती थी, पर स्वयं उसने कभी मेरे साथ किसी विषय की चर्चा नहीं छेड़ी। किन्तु उसकी नीरवता में भी एक रहस्यभरी सहृदयता थी, जो बीच-बीच में बरबस मुझे यह विश्वास दिलाना चाहती थी कि वह मेरे प्रति उदासीन नहीं है। पर यह विश्वास स्थायी नहीं रहता था। और मेरा मन अभीतक सन्देह और

दुविधा के झूले में झूलता रह गया। फिर भी मुझे एक बात का सन्तोष है। वह यह कि मुझे जीवन में एक ऐसी नारी से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसमें असाधारण गुण वर्तमान थे। उसने भले ही मुझे कभी नहीं चाहा हो, पर मैं उसे सदा चाहता रहा हूँ और चाहता रहूँगा और अपनी इस चाह के कारण मैं अपने को धन्य समझता हूँ; क्योंकि मुझे इस बात पर विश्वास हो गया है कि विधाता की इस सृष्टि में कुछ निराली आत्माएँ ऐसी भी होती हैं, जो किसी प्रकार की पार्थिव चाह या लगावट से दूर होती हैं। और जिनकी सरस तथा करुण स्नेहधारा सब पर समान रूप से बरसती है। ऐसी महान् आत्माओं से परिचित होने का सौभाग्य बहुत कम लोगों को होता है। इसीलिए उन्हें चाहने वालों को भी मैं धन्य मानता हूँ।

विह्वल आवेग के कारण बहुत सी बेसिर-पैर की बातें लिख कर तुम्हारा समय नष्ट किया है, क्षमा करना।

तुम्हारा
सरयू

× × ×

इलाहाबाद, १६ दिसम्बर

बहन जानकी,

तुम्हारा पत्र समय पर मिल गया था। अनेक झंझटों में पड़ने और चित्त की अशान्ति के कारण अभी तक उत्तर न दे सकी, क्षमा करना।······प्रमीला की मृत्यु का शोक लगा ही था कि इस बीच एक दूसरी दुःखदायी घटना हो गई। सरयू भैया पाँच रोज से लापता हैं। बिना किसी से कुछ कहे सुने वे न-मालूम कहाँ चल दिये, इस बात का कुछ भी अभी तक किसी को पता नहीं लगा।

तुम्हारी स्नेहाकांक्षिणी
मालती

श्री भगवतीचरण वर्मा

[जन्म सन् १९०३ ई०]

दो बाँकें

वर्माजी का जन्म उन्नाव जिलेके शफीपुर नामक गाँव में हुआ। पाँच वर्ष की अवस्था में ही पिता का देहांत हो गया, जो कानपुर में वकील थे। इण्टर तक की शिक्षा कानपुर में हुई। बी० ए०, एल० एल० बी० इलाहाबाद विश्वविद्यालय से किया। फिर वकालत की। कुछ दिनों तक कलकत्ते में 'विचार' नामक साप्ताहिक पत्र का संपादन किया। बाद को वहीं कुछ सिनेमा-चित्रों के लिए संवाद और गायन लिखे। ।आपके प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' की फिल्म भी बनी। इस समय लखनऊ रेडियो में हैं।

आप हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार और कवि हैं। साहित्य में प्रवेश काव्य-रचना के द्वारा हुआ। बाद में उपन्यास और कहानियाँ लिखीं। आपकी सर्वोत्तम कहानिआँ वे हैं जिनमें आधुनिक सभ्यता, परंपराभुक्त नैतिक मूल्यों, झूठी प्रशंसा का मोह, आधुनिक नारी की आत्मप्रवंचना आदि विषयों पर व्यंगपूर्ण रचना की गई है। सामाजिक कहानियों में

कभी-कभी मानसिक संघर्ष का चित्रण भी आपने बड़ी मार्मिकता से किया है। कथावस्तु की कलापूर्ण योजना की ओर आपका उतना ध्यान नहीं रहता जितना अपने विषय को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यंजित करने के लिए वर्णन की ओर। सजीव भाषा-शैली और वर्णनकौशल आपकी कहानियों के महत्त्वपूर्ण आकर्षण हैं। आपके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं—'इन्स्टालमेंट' और 'दो बाँके'।

'दो बाँके' वर्माजी की प्रसिद्ध कहानी है जिसमें झूठी शान और निरे ढोंग का व्यंगपूर्ण चित्रण हुआ है। इसमें कथांश उतना ही है जो इसे शुद्ध 'स्केच' या 'पर्सनल एसे' बनने से बचाए हुए है।

दो बाँके

शायद ही कोई ऐसा अभागा हो जिसने लखनऊ का नाम न सुना हो ; और युक्तप्रान्त में ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान में, और मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि सारी दुनिया में लखनऊ की शोहरत है। लखनऊ के सफेदा आम, लखनऊ के खरबूजे, लखनऊ की रेवड़ियाँ ; ये सब ऐसी चीजें हैं जिन्हें लखनऊ से लौटते समय लोग सौगात की तौर पर साथ ले जाया करते हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी चीज़ें हैं जो साथ नहीं ले जाई जा सकतीं, और उनमें लखनऊ की जिन्दादिली और लखनऊ की नफ़ासत विशेष रूप से आती हैं।

ये तो वे चीजें हैं, जिन्हें देशी और परदेशी सभी जान सकते हैं, पर कुछ ऐसी भी चीजें हैं जिन्हें कुछ लखनऊ वाले तक नहीं जानते, और अगर परदेसियों को इनका पता लग जाय, तो समझिये कि उन परदेसियों के भाग खुल गये। इन्हीं विशेष चीज़ों में आते हैं लखनऊ के "बाँके"।

'बाँके' शब्द हिन्दी का है या उर्दू का, यह विवादग्रस्त विषय हो सकता है, और हिन्दीवालों का कहना है—इन हिन्दीवालों में मैं भी हूँ—कि यह शब्द संस्कृत के 'बंकिम' शब्द से निकला है ; पर यह मानना पड़ेगा कि जहाँ 'बंकिम' शब्द में कुछ गम्भीरता है, कभी-कभी कुछ तीखापन झलकने लगता है, वहाँ 'बाँके' शब्द में एक अजीब बाँकापन है। अगर जवान बाँका-तिरछा न हुआ, तो आप निश्चय समझ लें कि उसकी जवानी की कोई सार्थ-

कता नहीं। अगर चितवन बाँकी नहीं, तो आँख का फोड़ लेना अच्छा है ; बाँकी अदा और बाँकी झाँकी के बिना जिन्दगी सूनी हो जाय। मेरे खयाल से अगर दुनिया से बाँका शब्द उठ जाय, तो कुछ दिलचले लोग खुद-कुशी करने पर आमादा हो जायँगे। और इसीलिए मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि लखनऊ बाँका शहर है, और इस बाँके शहर में कुछ बाँके रहते हैं, जिनमें ग़जब का बाँकपन है। यहाँ पर आप लोग शायद झल्ला कर यह पूछेंगे— 'म्याँ यह 'बाँके' है क्या बला ? कहते क्यों नहीं ?' और मैं उत्तर दूँगा कि आप में सब्र नहीं ; अगर इन बाँकों की एक बाँकी भूमिका नहीं हुई, तो फिर कहानी किस तरह बाँकी हो सकती है !

हाँ तो लखनऊ शहर में रईस हैं। तवायफें हैं और इन दोनों के साथ शोहदे भी हैं। बकौल लखनऊ वालों के, ये शोहदे ऐसे-वैसे नहीं हैं। ये लखनऊ की नाक हैं ! लखनऊ की सारी बहादुरी के ये ठीकेदार हैं और ये जान ले लेने तथा जान दे देने पर आमादा रहते हैं। अगर लखनऊ से ये शोहदे हटा दिये जायँ, तो लोगों का यह कहना 'अजी लखनऊ तो जनानों का शहर है।' सोलह आने सच्चा उतर जाय।

जनाब, इन्हीं शोहदों के सरगनों को लखनऊ वाले 'बाँके' कहते हैं। शाम के वक्त तहमत पहने हुए और कसरती बदन पर जालीदार बनियाइन पहन कर उसके ऊपर बूटेदार चिकन का कुरता डाटे हुए जब ये निकलते हैं, तब लोग-बाग बड़ी हसरत की निगाहों से उन्हें देखते हैं। उस वक्त इनके पट्टेदार बालों में करीब आध पाव चमेली का तेल पड़ा रहता है, कान में इत्र की अनगिनती फुरहरियाँ खुँसी रहती हैं और एक बेले का गजरा गले में तथा एक हाथ की कलाई पर रहता है। फिर ये अकेले भी नहीं निकलते, इनके साथ शार्गिद-शोहदों का जलूस रहता है, एक-

से-एक बोलियाँ बोलते हुए, फबतियाँ कसते हुए और शेखियाँ हाँकते हुए। उन्हें देखने के लिए एक हजूम उमड़ पड़ता है।

तो उस दिन मुझे अमीनाबाद से नख्खास जाना था। पास में पैसे कम थे ; इसलिए जब एक नवाब साहब ने आवाज दी 'नख्खास' तो मैं उचक कर उनके इक्के पर बैठ गया। यहाँ यह बतला देना बेजा न होगा कि लखनऊ के इक्केवालों में तीन चौथाई शाही खानदान के हैं, और यही उनकी बदकिस्मती है कि उनका वसीका बन्द या कम कर दिया गया, और उन्हें इक्का हाँकना पड़ रहा है।

इक्का नख्खास की तरफ चला और मैंने मियाँ इक्के वाले से कहा—"कहिये नवाब साहब! खाने-पीने भर को तो पैदा कर लेते हैं?"

इस सवाल का पूछा जाना था कि नवाब साहब के उद्‌गारों के बाँध का टूट पड़ना था। बड़े करुण स्वर में बोले—"क्या बतलाऊँ हुजूर, अपनी क्या हालत है, कह नहीं सकता! खुदा जो कुछ दिखलाएगा, देखूँगा! एक दिन थे जब हम लोगों के बुजुर्ग हुकूमत करते थे। ऐशो-आराम की जिन्दगी बसर करते थे; लेकिन आज हमें—उन्हीं की औलाद को—भूखों मरने की नौबत आ गई। और हुजूर, अब पेशे में कुछ रह नहीं गया। पहले तो ताँगे चले, जी को समझाया-बुझाया, म्याँ, अपनी-अपनी क़िस्मत! मैं भी ताँगा ले लूँगा, यह तो वक्त की बात है, मुझे भी फायदा होगा; लेकिन क्या बतलाऊँ हुजूर, हालत दिनोंदिन बिगड़ती ही गई। अब देखिए, मोटरों पर मोटरें चल रही हैं। भला बतलाइए हुजूर, जो सुख इक्के की सवारी में है, वह भला ताँगे या मोटर में मिलने का? ताँगे में पलथी मारकर आराम से बैठ नहीं सकते। जाते उत्तर की तरफ हैं, मुँह दक्खिन की तरफ रहता है। अजी साहब,

हिन्दुओं में मुरदा उलटे सिर ले जाया जाता है, लेकिन ताँगे में लोग जिन्दा ही उलटे सिर चलते हैं। और जरा गौर फरमाइये ! ये मोटरें शैतान की तरह चलती हैं; जहाँ जाती हैं, वह बला की धूल उड़ाती हैं कि इन्सान अन्धा हो जाय। मैं तो कहता हूँ कि बिना जानवर के आप चलने वाली सवारी से दूर ही रहना चाहिए, उसमें शैतान का फेर है ”

इक्के वाले नवाब और न जाने क्या-क्या कहते, अगर वे 'या अली !' के नारे से चौंक न उठते।

सामने क्या देखते हैं कि एक आलम उमड़ा पड़ रहा है। इक्का रक़ाबगंज के पुल के पास पहुँच कर रुक गया।

एक अजीब समाँ था। रकाबगंज के पुल के दोनों तरफ़ क़रीब पन्द्रह हज़ार की भीड़ थी; लेकिन पुल पर एक आदमी नहीं। पुल के एक किनारे क़रीब पचीस शोहदे लाठी लिये हुए खड़े थे, और दूसरे किनारे भी उतने ही। एक खास बात और थी कि पुल के एक सिरे पर सड़क के बीचोबीच एक चारपाई रक्खी थी और दूसरे सिरे पर भी सड़क के बीचोबीच दूसरी। बीच-बीच में रुक-रुक कर दोनों ओर से 'या अली !' के नारे लगते थे।

मैंने इक्के वाले से पूछा—"क्यों म्याँ, क्या मामला है ?"

म्याँ इक्के वाले ने एक तमाशाई से पूछ कर बतलाया—"हुजूर आज दो बाँकों में लड़ाई होने वाली है, उसी लड़ाई को देखने के लिए यह भीड़ इकट्ठी है।"

मैंने फिर पूछा—"यह क्यों ?"

म्याँ इक्के वाले ने जवाब दिया—"हुजूर, पुल के इस पार के शोहदों का सरग़ना एक बाँका है और उस पार के शोहदों का सरग़ना दूसरा बाँका। कल इस पार के एक शोहदे से पुल के उस पार के दूसरे शोहदे का कुछ झगड़ा हो गया और उस

झगड़े में कुछ मार-पीट हो गई। इस फ़िसाद पर दोनों बाँकों में कुछ कहा-सुनी हुई और उस कहा-सुनी में ही मैदान बद दिया गया।"

चुप हो कर मैं उधर देखने लगा। एकाएक मैंने पूछा—"लेकिन ये चारपाइयाँ क्यों आई हैं?"

"अरे हुजूर! इन बाँकों की लड़ाई कोई ऐसी-वैसी थोड़ी ही होगी; इसमें खून बहेगा और लड़ाई तब तक खत्म न होगी, जब तक एक बाँका खत्म न हो जाय। आज तो एक-आध लाश गिरेगी। ये चारपाइयाँ उन बाँकों की लाश उठाने आई हैं। दोनों बाँके अपनी बीबी-बच्चों से रुखसत लेकर और कर्बला के लिए तैयार हो कर आवेंगे।"

इसी समय दोनों ओर से 'या अली!' की एक बहुत बुलन्द आवाज उठी। मैंने देखा कि पुल के दोनों तरफ हाथ में लाठी लिये हुए दोनों बाँके आ गये। तमाशाइयों में एक सकता-सा छा गया; सब लोग चुप हो गये।

पुल के इस पार वाले बाँके ने कड़क कर दूसरे पार वाले बाँके से कहा—"उस्ताद!"

और दूसरे पार वाले बाँके ने कड़क कर उत्तर दिया—"उस्ताद!"

पुल के इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज खून हो जायगा, खून!"

पुल के उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज लाशें गिर जायँगी, लाशें!"

पुल के इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज क़हर हो जायगा, क़हर!"

पुल के उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज क़यामत बरपा हो जायगी, क़यामत !"

चारों ओर एक गहरा सन्नाटा फैला था। लोगों के दिल धड़क रहे थे, भीड़ बढ़ती ही जा रही थी।

पुल के इस पार वाले बाँके ने लाठी का एक हाथ घुमाकर एक क़दम बढ़ते हुए कहा—"तो फिर उस्ताद होशियार !"

पुल के इस पार वाले बाँके के शागिर्दों ने गगन-भेदी स्वर में नारा लगाया—"या अली !"

पुल के उस पार वाले बाँके ने भी लाठी का एक हाथ घुमा कर एक क़दम बढ़ाते हुए कहा, 'तो फिर उस्ताद सम्हलना !"

पुल के उस पार वाले बाँके के शागिर्दों ने गगन-भेदी स्वर में नारा लगाया—"या अली !"

दोनों तरफ से दोनों बाँके, क़दम-ब-क़दम लाठी के हाथ दिखलाते हुए तथा एक दूसरे को ललकारते आगे बढ़ रहे थे, दोनों तरफ के बाँकों के शागिर्द हर क़दम पर "या अली !" के नारे लगा रहे थे, और दोनों तरफ के तमाशाइयों के हृदय उत्सुकता, कौतूहल तथा इन बाँकों की वीरता के प्रदर्शन के कारण धड़क रहे थे।

पुल के बीचोबीच, एक दूसरे से दो क़दम की दूरी पर दोनों बाँके रुके। दोनों ने एक-दूसरे को थोड़ी देर ग़ौर से देखा। फिर दोनों बाँकों की लाठियाँ उठीं, और दाहिने हाथ से बाएँ हाथ में चली गईं।

इस पार वाले बाँके ने कहा—"फिर उस्ताद !"

उस पार वाले बाँके ने कहा—"फिर उस्ताद !"

इस पार वाले बाँके ने अपना हाथ बढ़ाया, और उस पार वाले बाँके ने अपना हाथ बढ़ाया। और दोनों के पंजे गुँथ गये।

दोनों बाँकों के शागिर्दों ने नारा लगाया—"या अली !"

फिर क्या था ! दोनों बाँके जोर लगा रहे हैं; पंजा टस से मस नहीं हो रहा है। दस मिनट तक तमाशबीन सकते की हालत में खड़े रहे।

इतने में इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, ग़जब के कस हैं।"

उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, बला का जोर है !"

इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, अभी तक मैंने समझा था कि मेरे मुक़ाबिले का लखनऊ में कोई दूसरा नहीं है।"

उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, आज कहीं जाकर मुझे अपनी जोड़ का जवाँमर्द मिला !"

इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, तबीअत नहीं होती कि तुम्हारे जैसे बहादुर आदमी का खून करूँ !"

उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, तबीअत नहीं होती कि तुम्हारे जैसे शेर दिल आदमी की लाश गिराऊँ !"

थोड़ी देर के लिए दोनों मौन हो गये; पंजा गुँथा हुआ, टस से मस नहीं हो रहा है।

इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, झगड़ा किस बात का है ?"

उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, यही सवाल मेरे सामने है !"

इस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, पुल के इस तरफ़ के हिस्से का मालिक मैं !"

उस पार वाले बाँके ने कहा—"उस्ताद, पुल के इस तरफ के हिस्से का मालिक मैं !"

और दोनों ने एक साथ कहा—"पुल की दूसरी तरफ़ से न हमें कोई मतलब है और न हमारे शागिर्दों को !"

दोनों के हाथ ढीले पड़े, दोनों ने एक-दूसरे को सलाम किया और फिर दोनों घूम पड़े। छाती फुलाये हुए दोनों बाँके अपने शागिर्दों से आ मिले। बिजली की तरह यह ख़बर फैल गई कि दोनों बाँके बराबर की जोड़ छूटे और उनमें सुलह हो गई।

इक्के वाले को पैसे देकर मैं वहाँ से पैदल ही लौट पड़ा क्योंकि देर हो जाने के कारण नख्खास जाना बेकार था।

इस पार वाला बाँका अपने शागिर्दों से घिरा हुआ चल रहा था। शागिर्द कह रहे थे—"उस्ताद, इस वक्त बड़ी समझदारी से काम लिया, वरना आज लाशें गिर जातीं।"—"उस्ताद,हम सब-के-सब अपनी-अपनी जान दे देते !"—"लेकिन उस्ताद, ग़ज़ब के कस हैं।"

इतने में किसी ने बाँके से कहा—"मुला स्वाँग खूब भर्‍यो !"

बाँके ने देखा कि एक लम्बा और तगड़ा देहाती, जिसके हाथ में एक भारी- सा लट्ठ है, सामने खड़ा मुसकरा रहा है।

उस वक्त बाँके खून का घूँट पी कर रह गये। उन्होंने सोचा—एक बाँका दूसरे बाँके से ही लड़ सकता है, देहातियों से उलझना उसे शोभा नहीं देता।

और शागिर्द भी खून का घूँट पी कर रह गये। उन्होंने सोचा—भला उस्ताद की मौजूदगी में उन्हें हाथ उठाने का कोई हक़ भी है ?

श्री यशपाल

[जन्म—१९०६]

सोमा का साहस

यशपाल जी के परिवार का 'आदिमस्थान' काँगड़े का पहाड़ी जिला है। सातवीं कक्षा तक की शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में मिली। सात वर्ष गुरुकुल में रहने के बाद लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल में आये। माँ लाहौर में एक आर्य-कन्या-पाठशाला के छात्रावास की सुपरिण्टेंडेंट थीं। कुछ दिनों बाद जब वे फिरोजपुर की एक आर्य-कन्या-पाठशाला की मुख्याध्यापिका हो गईं तो इन्हें भी वहीं से मैट्रिक करना पड़ा। बी० ए० लाहौर के पंजाब नेशनल कालेज से किया। आरंभ में कुछ दिनों तक कांग्रेस में कार्य किया। बाद को क्रान्तिकारी आंदोलन में प्रमुख रूप से भाग लिया और कई बार जेल गये। 'विप्लव' नामक प्रसिद्ध राजनीतिक मासिक पत्र का संपादन आपने कई वर्ष किया। अब लखनऊ में रहते और स्वतंत्र रूप से लेखन-कार्य करते हैं।

हिंदी के वर्तमान कथाकारों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। समाज के विभिन्न वर्गों की जीवन-समस्याओं को लेकर लिखी गई इनकी कहानियाँ बहुत मार्मिक हुई हैं। दो विरोधी स्थितियों का वैषम्य दिखला कर व्यंग की व्यंजना करना इनकी एक महत्त्वपूर्ण

विशेषता है। नये नये आकर्षक प्रसंगों की सुंदर कल्पना करने में ये अत्यंत प्रवीण हैं। इनकी बहुत-सी कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें प्रचारात्मक वृत्ति उभड़ आने से मार्मिकता नष्ट हो गई है। ये उच्चकोटि के उपन्यासकार हैं। इनके व्यंगपूर्ण राजनीतिक निबंध भी प्रभावपूर्ण हुए हैं। कहानियों के प्रकाशित संग्रह हैं— 'पिंजरे की उड़ान' 'अभिशप्त' 'वो दुनिया' 'ज्ञानदान' 'तर्क का तूफान' 'भस्मावृत चिनगारी' 'फूलो का कुर्ता' 'धर्मयुद्ध' और 'उत्तराधिकारी' आदि।

इस कहानी में एक ही मूलभाव के दो रूपों का वैषम्य (Contrast) दिखलाकर लेखक ने बड़े कौशल से अत्यंत मार्मिक प्रभाव की सृष्टि की है। बच्चे को आग से निकाल कर सोमा ने अद्भुत साहस दिखलाया! समाज की रूढ़ि तोड़ कर अपने मन का दूसरा विवाह करके भी उसने साहस ही का काम किया था। पर समाज की दृष्टि में यह साहस इतना अनुचित है कि इसका पता लगते ही बच्चे को आग से बचाने का साहस भी दुर्गुण बन जाता है। समाज में व्यक्ति का आदर उसके कर्मों से नहीं, उसकी सामाजिक मर्यादा-पालन की तत्परता के अनुसार होता है, चाहे मर्यादा की इस भावना का कोई विवेकपूर्ण नैतिक आधार न हो, चाहे यह कुछ अंशों में अमानुषिक ही क्यों न हो—समाज के इस रूढ़िग्रस्त दुराग्रह की आलोचना प्रस्तुत कहानी का प्रतिपाद्य है। आनुषंगिक रूप से स्त्रियों के स्वभाव की कमजोरी और वर्गगत अहंकार की व्यंजना भी इस रचना में मार्मिक ढंग से हुई है। संवाद अनेक दृष्टियों से बहुत अच्छे हैं। चरमसीमा पर समाप्त होने से कहानी का प्रभाव बढ़ गया है।

सोमा का साहस

मिसेज़ चड्ढा अपनी बड़ी लड़की कुसुम की सगाई का बुलावा देने मिसेज़ गुर्टू के यहाँ गई थीं! मिसेज़ गुर्टू ने विश्वास दिलाया—'वाह आऊँगी कैसे नहीं? कुसुम जैसे तुम्हारी बेटी वैसे मेरी।'

रामप्यारी चड्ढा ने कहा—'उस दिन तुम्हारे यहाँ वह कौन लड़की थी? क्या नाम था...सोमा! उसे भी बुला लेना। बहुत अच्छा गाती है, गला बड़ा मीठा है। पास-पड़ोस की लड़कियाँ और कुसुम की सहेलियाँ भी आयेंगी। तुम्हारी कृपा से ज़रा रौनक हो जायेगी। मेरी ओर से मिन्नत कर देना।'

मिसेज़ गुर्टू ने फिर विश्वास दिलाया—'फ़िक्र न करो, मैं उसे भी लाऊँगी, मेरी बात वह कैसे टाल सकती है।'

लाला रामदास चड्ढा के यहाँ कुसुम की सगाई का समारोह खूब जम रहा था। मर्दानी बैठक में बिरादरी और मित्र लोग गप-शप कर रहे थे। इस ज़माने में भी लड़की के लिये अच्छा और लायक वर चुन लेने की प्रशंसा कर बधाई दे रहे थे। भीतर उससे कहीं अधिक जमाव स्त्रियों का था। जैसा साड़ियों के रंग का बावेला वैसा ही शोर भी। सभी कुछ न कुछ बोल रही थीं। दूसरे की बात सुनने की चिन्ता किसी को न थी। साड़ियों और ज़ेवरों की उस नुमायश और शोर में, आँखों और ओठों पर रहस्यभरी मुस्कराहट लिये सोमा चुप्प-सी यों अलग जान पड़ती थी जैसे रत्तियों से भरी थाली में मटर का एक सुफ़ेद दाना आ पड़ा हो। जैसी उसकी नीरव मुस्कराहट थी वैसी ही उसकी

साड़ी, गेरुआ रंग की लाल किनारेदार; कानों में सीप के टॉप्स और हाथों में रबड़ की एक-एक लाल चूड़ी।

उत्सव की परेशानी में हाँफते हुए मिसेज़ चड्ढा रामप्यारी ने सोमा के समीप आ अनुरोध किया—'तुम कुछ गाओ न! तुम्हारे लिये बाजा मँगा रक्खा है।'

मुस्कराते हुए होंठ खोल सोमा ने मिसेज़ गुर्टू की ओर देख धीमे से कहा—'गाना मुझे आता कहाँ है।'

अधिकार के स्वर में मिसेज़ गुर्टू ने रामप्यारी का अनुमोदन किया—'हाँ, ज़रूर सुनायेगी। कितना अच्छा तो गाती है। मैं तो कहती हूँ, कुसुम और दूसरी लड़कियों को भी सिखलाये तो अच्छा है।'

बाजा आ गया। कुछ लजाते हुए सोमा ने बाजे का पर्दा खोल स्वरों पर हाथ रखा। हारमोनियम का स्वर कमरे में जमा स्त्रियों के कोलाहल से ऊँचा उठ गया। विस्मय से आँखें फाड़ ठोड़ी पर उँगली रख, अकस्मात बाजा बजा देनेवाली की ओर वे देखने लगीं।

कमरे में छा गये सन्नाटे से सकुचा कर सोमा ने मिसेज़ गुर्टू की ओर देख आज्ञा के लिये पूछा—'क्या गाऊँ?'

'कुछ सुनाओ, वही सुना दो जो उस दिन सुनाया था।'—मिसेज़ गुर्टू ने उत्तर दिया और गर्व से गर्दन ऊँची कर माथे का आँचल सीधा करते हुए उपस्थित स्त्रियों पर अपना प्रभाव देखने के लिये दृष्टि दौड़ाई। उस समाज में उनकी स्थिति और आदर सबसे अधिक था। उनके पति बैरिस्टर गुर्टू बड़े आदमी थे, कामयाब वकील और कितनी ही संस्थाओं के कर्ता-धर्ता।

सोमा ने धीमे स्वर में खम्माच उठाया और तीव्र में गाने लगी। गाना कमरे की स्तब्धता में भर गया। गाना पूरा होने

पर सुनने वालियों की ओर दृष्टि जाने पर जान पड़ा, यत्न से शुद्ध राग गाने के परिश्रम से किसी को विशेष संतोष नहीं हुआ। उसके इस गाने की कद्र, दीवार के उस पार बैठ सुनने वाले पुरुष समाज में ही अधिक हुई। राग की परख न होते भी स्त्रियों को गाना सुनने का कौतूहल था। स्वर और ताल का ऊँच-नीच न समझने पर भी गाने का स्वर तो कान में मीठा लगता ही है। कुसुम की एक सहेली ने आगे बढ़ कर कहा—'और सुनाइये भैन जी!'

कुसुम की माँ और मिसेज गुर्टू के समर्थन करने पर सोमा ने दूसरा गाना सुनाया। सिनेमा की चलती हुई चीज, 'तुमी ने मुझको प्रेम सिखाया·····' सोमा का चुनाव समय-स्थान के अनुकूल था। उपस्थित महिलाओं के होंठ थिरक गये। जवान लड़कियाँ हृदय में गुदगुदी अनुभव कर खिल उठीं।

सोमा का गाना अभी समाप्त न हुआ था, नीचे आँगन से बच्चों का भयार्त चिल्लाहट सुनाई दी। कुसुम की माँ—'हाय यह क्या?'—कह छज्जे की ओर भागीं और उनके पीछे सभी स्त्रियाँ। सोमा भी बाजा बन्द कर उस चिल्लाहट का कारण जानने के लिये छज्जे पर पहुँची।

सगाई के जलसे में आये इतने अधिक आदमियों के खाने के प्रबन्ध के लिये लाला रामदास ने आँगन में नीचे जीने के दरवाजे के पास ही भट्ठी बनवा दी थी। पूरियाँ उतारने के लिये हलवाई आया था। दोपहर के खाने का सरंजाम चौथे पहर तक पूरा कर हलवाई कढ़ाई भट्ठी से नीचे उतार चला गया। आँगन में दो पलंग पड़े थे। भट्ठी के आस-पास मैदा सनी खाली बोरी, हलवाई के बैठने के लिये पीढ़ा, ऐसे ही दूसरे सामान पड़े थे। वहीं नीचे बच्चे खेल रहे थे। किसी रोक-टोक करनेवाले की आँख

न रहने के कारण बच्चों ने खेल-खेल में आँगन में दाँये बाजू गाय बाँधने की जगह से भूसी उठा-उठा भट्ठी में डालनी शुरू कर दी। भट्ठी अभी लाल थी, भूसी डालने पर जगमगा उठती और पतंगे जल-जल कर ऊपर उड़ते। बच्चों के लिये यह मनोरंजक खेल था। भूसी के बाद उन्होंने नीचे बिछी बोरी पर फैले मैदा को समेट भट्ठी में डालना शुरू किया। किसी बच्चे ने मैदे में सनी बोरी ही उठा भट्ठी में झोंक दी।

बोरी के भलभला कर जल उठने और उड़-उड़ कर बाहर गिरने से जीने के किवाड़ों में आग लग गई। किसी तरह आग की लपट समीप खेलती, कुसुम की सबसे छोटी बहन, शन्नो की मलमल की फ्राक में छू गई! बच्चे चिल्ला उठे!

लड़की के कपड़ों में आग लगी देख कुसुम की माँ चीख उठी और बेहोश हो गई। कई दूसरी मेहमान स्त्रियाँ भी चिल्ला उठीं। चिल्लाहट सुन लाला रामदास और दूसरे लोग दौड़ आये। जोर-जोर से नौकरों को पुकारा जाने लगा। मेहमानों की ख़ातिर से थक वे लोग पीठ टिकाने और चिलम का दम लगाने इधर-उधर सरक गये थे।

मकान की बनावट ऐसी थी कि आँगन का फर्श सड़क से नीचा होने और सड़क किनारे के कमरों की कुर्सी ऊँची रहने के कारण आँगन के चारों ओर केवल गाय बाँधने और असबाब रखने की जगह थी। ऊपर से सम्बन्ध था केवल जीने से। आँगन से एक दरवाजा गाय और असबाब के आने-जाने के लिये बगल की गली में खुलता था। गली से आवारा बछिया या कुत्तों को भीतर न आने देने और बच्चों को भागने से रोकने की सावधानी में नौकर इस दरवाजे में ऊपर की साँकल चढ़ा गये थे।

दो एक साहसी पुरुषों ने जलते जीने से आँगन में जाने की हिम्मत बाँधी। धुआँ घुट जाने और लपटों के कारण उन्हें लौटना पड़ा। 'रस्सी, रस्सी लाओ''धोती बाँध के उतर जाओ!'—सब ओर सलाह मशविरे और भयभीत स्त्रियों की चिल्लाहट का शोर मच रहा था। नल और बिजली के जमाने में मकान में रस्सी का क्या काम? लोग पलंगों की निवाड़ और दावन की ओर लपके परन्तु इस सब से पहले किसी से कुछ न कह, सोमा छज्जे के छोटे जंगले के उस पार लटक गई और नीचे पलंग पर कूद पड़ी।

नीचे पहुँच उसने हाथ पैर पटकती और चिल्लाती लड़की को उठा अपनी साड़ी के आँचल में लपेट लिया। इस दृश्य से चकित लोगों का शोर थम गया। इतने में नौकर भी आ पहुँचे। पानी की बाल्टियाँ जीने पर बह गईं। दो मिनिट में आग समाप्त हो गई।

भय से सहमी लड़की को साड़ी के आँचल में लपेट, गोद में लिये सोमा पुरुषों और स्त्रियों की चकित आँखों के सामने से जीने का कीचड़ और पानी लाँघ ऊपर आ गई। लड़की का शरीर जगह-जगह से झुलस गया था। तुरन्त डाक्टर बुलाया गया।

सगाई के जलसे का रंग भय और स्तब्धता में बदल गया। कुसुम की माँ को होश आया तो वे आँसू पोंछती हुई लड़की के बिछौने के पास आ बैठीं।

कुछ मिनिट बाद दुर्घटना के आतंक से छा गई स्तब्धता में धीमे-धीमे बोलने की फुसफुसाहट शुरू हुई और शीघ्र ही स्त्रियों की बातचीत का शोर मच गया। अब इस शोर में एक ही प्रसंग था। स्त्रियों और पुरुषों में एक ही चर्चा थी। अनेक अवसरों पर अनेक कारणों से आग लग जाने, आग बुझाने या आग से

घिरे लोगों को साहस से बचाने की कहानियाँ और सोमा के साहस की प्रशंसा। कैसे वह जंगले के बाहर लटक कूद पड़ी। नीचे पलँग पर गिरते समय उसकी साड़ी का आँचल कैसे ऊपर उठ गया। जंगले से बाहर उसने पहले दाहिना पाँव किया या बाँया ? उसके यों कूद पड़ने से प्रौढ़ महिलाओं और युवतियों के हृदय कैसे धड़कने लगे ? और कैसे उन्होंने भय से आँखें मूँद लीं।

सोमा जल से भींगे अपने केशों को माथे से पीछे हटा, लथपथ कपड़े सम्भाले, पीड़ा और दहशत से काँपती लड़की के माथे पर हाथ फेर कर सान्त्वना दे रही थी। चारों ओर से अपनी प्रशंसा की बौछार मुँह पर पड़ती देख संकोच और लज्जा से उसने गर्दन झुका ली।

सोमा की इतनी प्रशंसा सुन मिसेज गुर्टू ने गर्दन ऊँची कर कहा—'इतनी अच्छी लड़की है बेचारी। मुसीबत में थी। इसका आदमी हमारे यहाँ मुंशी है। मदद के लिये ही साहब ने रख लिया, बड़ा मुंशी तो वैसे दूसरा है। बेचारी मेरे यहाँ आई। साहब से मैंने कहा—'ग़रीब लोग हैं। इस ज़माने में तीस-पैंतीस रुपये में होता क्या है। ग़रीब पढ़ी लिखी भी है। स्कूल में ही काम दिला दो। मेरे यहाँ तो बेचारी आती ही रहती है।'

मिसेज़ गुर्टू की इस प्रशंसा से प्रौढ़ महिलाओं और युवतियों को संतोष न हुआ। उनकी बात समाप्त होते ही फिर सोमा के साहस, उसके गाने के मिठास की चर्चा होने लगी। छोटी-छोटी लड़कियाँ उसके बिल्कुल समीप आ उसकी गोद में हाथ रख, उसके मुख की ओर घूरने लगीं। जवान लकड़ियाँ उसकी साड़ी के कपड़े और किनारे को हाथ से टटोल कहने लगीं, कितनी अच्छी साड़ी है। ऐसी कहाँ मिलेगी ? कुसुम की सहेली तारा

ने सोमा के कान में पहरे सीप के टॉप्स की तारीफ़ कर पूछा—'भैन जी यह कहाँ से लिए ? बड़े अच्छे हैं सचमुच।'

सोमा के लिये वहाँ और बैठना कठिन हो गया। मुँह पर की जाने वाली प्रशंसा से उसे झेंप आ रही थी। जंगले से पलंग पर कूदते समय पाँव में आ गई मोच की पीड़ा उसे व्याकुल कर रही थी। उस पीड़ा की चर्चा उसने न की थी परन्तु कष्ट तो था ही।

अपनी लथपथ साड़ी की ओर संकेत कर सोमा ने कुसुम की माँ को सम्बोधन किया—'बहिन जी, कोई दूसरी धोती हो तो बदल डालूँ। फिर पहुँचा दूँगी।'

रामप्यारी अपनी भूल से लज्जित हो बोलीं—'हाय-हाय, धोती क्या तुमसे अच्छी है। मैं बलिहार जाऊँ। धोतियों की क्या कमी है। हाय, मैं मर जाऊँ मुझे ख्याल ही नहीं रहा। चल बल्ली चल, ऊपर चल। आलमारी खोल दूँ। पसन्द की साड़ी निकाल ले।' वे उठीं और सोमा की पीठ पर हाथ रख लिवा ले गईं। अपनी प्रशंसा की झेंप से बचने के लिए सोमा अपने चुटियाए पाँव की लँगड़ाहट छिपाती कुसुम की माँ के साथ ऊपर चली गई।

नीले किनारे की एक सादी सफेद साड़ी बदल सोमा ने कुसुम की माँ से अपना पाँव बाँध लेने के लिए कपड़े का एक टुकड़ा माँगा। सोमा की चोट का हाल जान कुसुम की माँ का कलेजा उमड़ आया। उसे वहीं बैठा, चोट पर लगाने के लिए वे आम्बा हल्दी और सज्जी मिला कूटने लगीं। नीचे भीड़ में जा तमाशा बनने की अपेक्षा सोमा अपना पाँव दोनों हाथों में सम्भाले ऊपर ही बैठी रही।

कुसुम की माँ के साथ सोमा के ऊपर चले जाने पर भी

उसकी प्रशंसा का बवण्डर कम न हुआ। अब लड़कियाँ झगड़ रहीं थीं—सोमा जंगले से लटक कर नहीं कूदी। उसने जंगले की पटिया पर पैर रख छलाँग लगाई थी। दूसरी ने कहा—पक्का गाना वह प्रोफेसर साठे से भी अच्छा गाती है। बहस होने लगी—छलाँग लगाते समय उसे सबसे पहले किसने देखा ?

पान का नया बीड़ा दाँयें गाल में दबा मिसेज़ गुर्टू ने कहा—'ठोकरें खा रही थी। साहब से कह कर मैंने जगह दिलवा दी। यों कोई पूछता भी नहीं। अपना तो यह है कि जिस किसी का भला हो जाय······'

इतने पर भी सोमा के साहस, गाने और मीठे गले की चर्चा होती ही रही। बहस थी, सबसे पहले उसे अपने घर कौन बुलाये ? लगातार वही प्रसंग चलता रहने से खीझ, मिसेज़ गुर्टू ने वितृष्णा से होंठ बिचका कर कहा– 'अरे भाई, इतना साहस न होता तो भाँवर लिए पति को छोड़ दूसरे के साथ यों आ बैठती······और क्या ?'

मिसेज गुर्टू की बात से सन्नाटा छा गया। रामप्यारी की रिश्ते की जिठानी गुरांदेई ने झुर्रियों के जाल से भरी अपनी ठोड़ी को अँगूठे और तर्जनी उँगली से दबा, झिमझिमी आँखों को झपक पूछा—'क्या ?'

मिसेज़ गुर्टू ने फैले हुए हाथ से सामने की हवा को दाँये से बाँये चीरते हुए कहा—'नहीं तो क्या !······सारे दिल्ली शहर में धूम मच गई। कचहरियों तक मामले चले गये। हाथ का पैंतरा बाँई ओर लौटाते हुए उन्होंने कहा—'बैरिस्टर दनूरिया हमारे साहब के दोस्त हैं। उन्होंने बचा दिया। नहीं तो दोनों को जेल हो जाती। यह सब हौसले ही तो हैं। बुड्ढे को छोड़ घर से भाग निकली। दनूरिया साहब ने बड़ी मुश्किल से साहब

के पास लाहौर भिजवा दिया; नहीं क़त्ल हो जाते। दनूरिया साहब के कहने से आर्यों ने समाज में व्याह करा दिया···और कहीं धर्म बिगाड़ती फिरे।···यहाँ भूखों मर जाते। साहब ने प्रतापचन्द को अपने यहाँ रख लिया और मैंने इसे इतना कह कर स्कूल में जगह दिलाई·····।'

गुरांदेई ने दोनों हाथ मल कर कहा—'यह रामप्यारी जो न करे सो थोड़ा···।' गंगो गुरांदेई की ही आयु की थी। दोनों हाथ दोनों गालों पर रखकर उसने कहा—'सतनाम-सतनाम' और सबको उसके साथ बैठाकर खिला भी दिया।' क्रोध से उसके होंठ फड़कने लगे। अनेक वर्ष तक सवेरे कड़ी सर्दी में उठ, पीतल का छोटा कमण्डल ले, रावी स्नान करने जाना सब विफल हो गया। क्रोध में उसने कहा—'कहाँ है रामप्यारी, उसके सिर में आग लगे। गुरांदेई उठ खड़ी हुई और परेशानी से पुकारा—'कहाँ है मेरा काला लहँगा? सामने खूँटी पर तो लटकाया था? हाय-हाय, किसने गिरा दिया? जाने कैसे-कैसे पाँव पड़े होंगे सब के?'

गुरांदेई की लड़की विशनी की ससुराल शहर में ही थी। वह भी बुलावे में आई थी। उसने यह कहानी सुनी तो अपने छोटे लड़के को बैठक की ओर धकेल कर कहा—जा अपने भाइय्ये (बाप) को जल्दी बुला।'

कुसुम की सहेली तारा झपटती हुई ऊपर गई। रामप्यारी हल्दी और सज्जी पीस कर कटोरे में उँगलियाँ पोंछ रही थी। उसके समीप बैठ तारा ने कान में सब बात कह दी। रामप्यारी

पाँव पर बोझ दिये बैठी थीं। यह बात सुन शरीर का बोझ फर्श पर आ टिका। हल्दी का कटोरा हाथ से छूट गया। माथा ठोंक पुकार उठीं—'हाय राम जी!' हल्दी भरे हाथ से माथे और साड़ी के आँचल पर छाप लग गई और रेशमी साड़ी छिंटा गई। बड़ी कठिनता से वह ज़ीना उतरीं।

नीचे खलबली मच गई थी। प्रौढ़ स्त्रियाँ अपने दुपट्टे और काले लहँगे ढूँढ़-ढूँढ़ तुरंत लौट जाने की तैयारी कर रही थीं। युवा स्त्रियाँ अपने नन्हें-नन्हें बच्चों पर झुँझला रही थीं। मर्द अपनी उपेक्षा से खिन्न हो पूछ रहे थे—'हुआ क्या?'

पानों का थाल उलट वे पैरों तले कुचले जा रहे थे। कालीन और जाजम खराब हो गये। यह सब लाला रामदास को दिखाई न दे रहा था। असहाय अवस्था में अपने बढ़े हुए पेट पर हाथ रखे वे असमय जल्दी में भागते जाते मेहमानों की ओर देख रहे थे और आशंका से कुछ पूछ भी न पाते।

शेष रह गई औरतों और लड़कियों में चर्चा अब भी सोमा का ही चल रहा था। तारा होठों पर हाथ रखे कह रही थी—'मैं मर गई, देख तो हौसला, कूद पड़ी, यह भी नहीं सोचा कि कपड़े उड़ने लगें तो ······पेटीकोट दीखने लगा!'

बिशनी ने कहा—'आग लगे ऐसे हौंसले में, मर्दों से बढ़ गई! आँगन से ज़ीना चढ़ कर आई तो सिर और बदन पर साड़ी कहाँ थी? सारे मर्द देख रहे थे। बाबा, हमसे ऐसा कभी नहीं हो सकता, चाहे मर जायँ।'

गोपाली ने उँगली की नोंक गाल पर रख कर कहा—'हाय-

हाय मुझे तो मदा से बड़ा डर लगता है।' सत्तो ने कलेजे पर हाथ रख दावा किया, उसे तो और भी अधिक डर लगता है।

नीचे जा अपनी प्रशंसा सुनने के संकोच में फँसने की अपेक्षा सोमा ने सोचा, वह ऊपर अकेली ही भली। कुसुम की माँ उसके पैर पर बाँधने के लिये हल्दी-सज्जी पीसने और कपड़ा लाने गई थीं। दस मिनिट, बीस मिनिट—आध घण्टे के करीब गुज़र गया। पाँव में दरद बढ़ रहा था सोमा परेशान होने लगी परन्तु कुसुम की माँ न लौटी। सोमा सोच रही थी, हो क्या गया ?

पन्द्रह मिनिट और भी गुजर गये। कोई उसकी सुध लेने न आया। नीचे स्त्रियों के ऊँचे स्वर में बोलने का शोर अधिक आ रहा था। सोच रही थी, उसे वहाँ अकेली बैठे इतनी देर हो गई किसी को उसकी चिन्ता नहीं। इससे तो अच्छा था, उसके लिये कोई सवारी ही मँगा देतीं। वह घर जा चोट को सेंकती और आराम से लेटती। उसी समय कम उम्र के नौकर—मुण्डू ने खबर दी—'बीबी जी, नीचे टाँगा खड़ा है।'

सोमा और भी विस्मित रह गई। उसके लिये सवारी आ गई थी। इसका मतलब था, चली जाये ! दीवार का सहारा ले वह बड़ी कठिनता से जीना उतरी। नीचे महफिल उजड़ चुकी थी। जो स्त्रियाँ शेष थीं उन्होंने उसे देख पीठ फेर लीं, जैसे पहचानती नहीं।

अभी तक सोमा अपनी प्रशंसा से सकुचा रही थी। इस उपेक्षा से दिल बैठने लगा परन्तु समझ कुछ न आता था। मकान की कुर्सी की सीढ़ियाँ उतर वह टाँगे की ओर बढ़ रही थी।

उस समय पीठ पीछे खिड़की से मिसेज़ गुट्टू का अस्पष्ट परन्तु तीव्र स्वर सुनाई दिया—'तो क्या मैं अपनी खुशी से उसे ले आई; तुम्ही ने तो सौ बार कहा था...।'

सोमा की आँखों में आँसू छलक आये परन्तु बह न सके... अभी तो उसके साहस की इतनी प्रशंसा हो रही थी !

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

[जीवनकाल सन् १९०४–१९४८ ई०]

गौरी

सुभद्रा जी का जन्म इलाहाबाद में हुआ। क्रास्थवेट कालेज इलाहाबाद में हाईस्कूल की प्रारम्भिक कक्षाओं तक शिक्षा मिली। विवाह जबलपुर के प्रतिष्ठित कांग्रेसी नेता और साहित्यिक ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर कई बार जेल गईं। आचार-विचार से प्रगतिशील महिला थीं। मध्यप्रांत की असेम्बली की सदस्या भी थीं।

आपकी कहानियाँ अपनी सरलता और स्वाभाविक चित्रण के कारण प्रसिद्ध हैं। इनमें नारी-हृदय का सुंदर उद्घाटन हुआ है। कवि-रूप में सुभद्राजी को पर्याप्त ख्याति मिली। आपकी कविताओं में राष्ट्रीय भावधारा का निर्मल और स्फूर्तिदायक प्रवाह देखने योग्य है। जिन रचनाओं में वात्सल्यपूर्ण मातृहृदय की अत्यन्त सरल, सरस और अकृत्रिम व्यंजना हुई है वे भी सुंदर बन पड़ी हैं। 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' और 'सीधे सादे चित्र' प्रकाशित कहानी-संग्रह तथा 'मुकुल', 'त्रिधारा' और 'झाँसी की रानी' कविता पुस्तकें हैं।

प्रस्तुत कहानी में लड़कियों के विवाह की समस्या ली गई है और नये ढंग से उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। गौरी के चरित्र में जो प्रगतिशीलता दिखाई पड़ती है उसकी मूल प्रेरणा नारी-व्यक्तित्व के आदर्शमूलक और ममताशील मातृत्व के अंश में निहित है। गौरी के चरित्र में भारतीय नारीत्व के आदर्शों की प्रतिष्ठा तो है पर उसमें युगानुरूप साहस और निर्भीकता का आविर्भाव दिखलाकर लेखिका ने उसका सबल रूप दिखाया है। कहानी में कोई प्रयत्नकृत कलात्मक सौष्ठव नहीं है, पर उसकी सीधी-सादी वर्णनशैली में एक आकर्षण है। कथा भी मंथर गति से आगे बढ़ती है पर पाठक की उत्सुकता बराबर बनी रहती है।

गौरी

शाम को, गोधूलि की बेला, कुली के सिर पर सामान रखवाये, जब बाबू राधाकृष्ण अपने घर आये, तब उनके भारी-भारी पैरों की चाल और चेहरे के भाव से ही कुन्ती ने जान लिया कि काम वहाँ भी नहीं हुआ। कुली के सिर पर से बिस्तर उतरवाकर, बाबू राधाकृष्ण ने उसे कुछ पैसे दिये। कुली सलाम करके चला गया। और वे पास ही पड़ी एक आराम कुर्सी पर, जिसके स्प्रिंग खुलकर ढीले होने के कारण कुछ इधर-उधर फैल गये थे—गिर-से पड़े। उनके इस प्रकार बैठने से स्प्रिंग आपस में टकराये, जिससे एक प्रकार की झन-झन की आवाज हुई। पास ही बैठे एक कुत्ते ने इधर-उधर देखा, फिर भों-भों करके भूँक उठा। इसी समय उनकी पत्नी कुन्ती ने कमरे में प्रवेश किया। काम की सफलता या असफलता के बारे में कुछ भी न पूछ कर कुन्ती ने नम्र स्वर से कहा—'चलो हाथ-मुँह धो लो, चाय तैयार है।'

"चाय" राधाकृष्ण चौंक पड़े—"चाय के लिए तो मैंने नहीं कहा था।"

"नहीं कहा था तो क्या हुआ, पीलो चलकर" कुन्ती ने आग्रहपूर्वक कहा।

"अच्छा चलो"—कहते हुए राधाकृष्ण पत्नी के पीछे-पीछे चले गये।

गौरी, अपराधिनी की भाँति, माता-पिता दोनों की दृष्टि से बचती हुई, पिता के लिए चाय तैयार कर रही थी। उसे ऐसा

लग रहा था कि पिता की सारी कठिनाइयों की जड़ वही है। न वह होती और न पिता को उसके विवाह की चिन्ता में इस प्रकार स्थान-स्थान घूमना पड़ता। वह मुँह खोलकर किस प्रकार कह दे कि उसके विवाह के लिए इतनी अधिक परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं। माता-पिता चाहे जिसके साथ उसकी शादी कर दें, वह सुखी रहेगी। न करें तो भी वह सुखी है। जब विवाह के लिए उसे जरा भी चिन्ता नहीं, तब माता-पिता इतने परेशान क्यों रहते हैं—गौरी यही न समझ पाती थी। कभी-कभी वह सोचती—क्या मैं माता-पिता को इतनी भारी हो गई हूँ ? रात-दिन सिवा विवाह के उन्हें कुछ और सूझता नहीं। तब आत्मग्लानि और क्षोभ से गौरी का रोम-रोम व्यथित हो उठता। उसे ऐसा लगता कि धरती फटे और वह समा जाय, किन्तु ऐसा कभी न हुआ।

गौरी—वह गौरी जो पूनों को चाँद की तरह बढ़ना भर जानती थी, घटने का जिसके पास कोई साधन ही नहीं था—बाबू राधाकृष्ण के लिए चिन्ता की सामग्री हो गई थी। गौरी उनकी एकमात्र सन्तान थी। उसका विवाह वे योग्य पात्र के साथ करना चाहते थे—यही सबसे बड़ी कठिनाई थी। योग्य पात्र का मूल्य चुकाने लायक उनके पास यथेष्ठ सम्पत्ति न थी। यही कारण था कि गौरी का यह उन्नीसवाँ साल चल रहा था फिर भी वे कन्या के हाथ पीले न कर सके थे। गौरी ही उनकी अकेली सन्तान थी। छुटपन से ही उसका बड़ा लाड़-प्यार हुआ था। प्रायः उसके उचित अनुचित सभी हठ पूरे हुआ करते थे। इसी कारण गौरी का स्वभाव निर्भीक, दृढ़निश्चयी और हठीला था। वह एक बार जिस बात को सोच समझ कर कह देती, फिर उस बात से उसे कोई हटा न सकता था। पिता की परेशा-

नियों को देखते हुए अनेक बार उसके जी में आया कि वह पिता से साफ-साफ पूछे कि 'आखिर वे उसके विवाह के लिए इतने चिन्तित क्यों हैं ! वह स्वयं तो विवाह को इतना आवश्यक नहीं समझती । और अगर पिता विवाह को इतना महत्व देते हैं, तो फिर पात्र और कुपात्र क्या ? विवाह करना है कर दें, किसी के भी साथ, वह हर हालत में सुखी और सन्तुष्ट रहेगी । उनकी इतनी परेशानी और चिन्ता अब उससे नहीं सही जाती ।' किन्तु संकोच और लज्जा उसकी जबान पर ताला-सा डाल देते । हजार बार निश्चय करके भी वह पिता से यह बात न कह सकी ।

पिता को आते देख गौरी चुपके-से दूसरे कमरे में चली गयी । राधाकृष्ण बाबू ने जैसे बे-मन से हाथ-मुँह धोया और पास ही रखी एक कुर्सी पर बैठ गये । वहीं एक मेज पर कुन्ती ने चाय और नमकीन पूरियाँ पति के सामने रख दीं । पूरियों की तरफ राधाकृष्ण ने देखा भी नहीं । चाय का प्याला उठाकर पीने लगे । कुन्ती ने डरते-डरते पूछा (ऐसी कन्या को जन्म देकर जिसके लिये वर ही न मिलता हो, कुन्ती स्वयं ही जैसे अपराधिनी हो रही थी)—

"जहाँ गये थे क्या वहाँ भी कुछ ठीक नहीं हुआ ?' "ठीक ! ठीक होने को वहाँ धरा ही क्या है ?"—चाय का घूंट गले से नीचे उतारते हुए बाबू राधाकृष्ण ने कहा—"सब हमीं लोगों पर है । विवाह करना चाहें तो सब ठीक है, न करना चाहें तो कुछ भी ठीक नहीं है ।"

कुन्ती ने उत्सुकता से पूछा—"फिर क्या बात है ? लड़के को देखा ?"

राधाकृष्ण—"हाँ देखा, अच्छी तरह देखा ! हुँः !" राधाकृष्ण फिर चाय पीने लगे । कुन्ती की समझ में यह पहेली न आयी,

उसने कहा—"जरा समझा कर कहो। तुम्हारी बात तो समझ में नहीं आती।"

राधाकृष्ण—"समझा कर कहता हूँ, सुनो। वह लड़का—लड़का नहीं आदमी, तुम्हारी गौरी के साथ मामूली चपरासी की तरह दिखेगा। बोलो करोगी ब्याह?"

कुन्ती—"विवाह की बात तो पीछे होगी। क्या रूप-रंग बहुत खराब है? फोटो में तो वैसा नहीं जान पड़ता।"

राधाकृष्ण—"रूप-रंग नहीं, रहन-सहन बहुत खराब है। इतनी सिधाई भी तो अच्छी नहीं, होती जिसके पीछे आदमी आदमी न दिखे। और फिर उमर भी तो अधिक है—३५-३६ साल। साथ ही दो बच्चे भी हैं। उन्हीं बच्चों को सम्भालने के लिए तो वे विवाह करना चाहते हैं। नहीं तो शायद न करते। उनकी दूसरी शादी है! उनकी उमंगे, उनका उत्साह सब ठण्डा पड़ गया है। वे अपने बच्चों के लिए एक धाय चाहते हैं। पर मेरी लड़की की तो दूसरी शादी नहीं है। और फिर वह साफ-साफ कहते हैं कि मैं केवल बच्चों के लिये विवाह करना चाहता हूँ।"

कुन्ती ने कहा—"जिन्हें दूसरी शादी करनी होती है वे सब बच्चों ही के बहाने तो शादी करते है, नहीं तो यह कहें कि अपने लिए करते हैं?"

राधाकृष्ण—"अरे नहीं-नहीं, वह आदमी कपटी नहीं है। उसके भीतर कुछ और बाहर कुछ हो ही नहीं सकता। हृदय तो उसका दर्पण की तरह साफ है। पर उसका खादीका कुरता, गांधी टोपी, फटे-फटे चप्पल देखकर जी हिचकता है—वह कहीं नेता बन कर व्याख्यान देने लायक है, पर किसी के घर दूल्हा बनकर जाने लायक नहीं है। इसके अलावा ३०) कुल उनकी तनखाह है। कांग्रेस-दफ्तर में सेक्रेटरी का काम करते हैं। तीन बार जेल जा

चुके हैं। किस दिन चले जाते हैं, कुछ ठिकाना नहीं"।

कुन्ती—"आदमी तो बुरा नहीं जान पड़ता।"

राधाकृष्ण—"बुरा आदमी तो मैं भी नहीं कहता इसे, पर वह गौरी का पति होने लायक नहीं है। सच बात यह है।"

कुन्ती—"फिर तुमने क्या कह दिया?"

राधाकृष्ण—"क्या कह देता? उन्हें बुला आया हूँ। अगले इतवार को आवेंगे, जिसमें तुम भी उन्हें देख लो। और वह आने के लिए भी तो बड़ी मुश्किल से तैयार हुए। कहने लगे—"नहीं साहब! मैं लड़की देखने न आऊँगा। इस तरह लड़की देख कर मुझसे किसी का अपमान नहीं किया जाता।" फिर जब मैंने उन्हें समझा कर कहा कि आप लड़की को न देखें, लड़की और उसकी माँ आपको देख लेंगी, तब कहीं बड़ी मुश्किल से राजी हुए।"

गौरी दरवाजे की आड़ से सब बातें सुन रही थी। जिस व्यक्ति के प्रति उसके पिता इतने असंतुष्ट और उदासीन थे, उसके प्रति गौरी के हृदय में अनजाने ही में कुछ श्रद्धा के भाव जाग्रत हो गए। राधाकृष्ण बाबू पान का बीड़ा उठाकर अपनी बैठक में चले गए। और उसी रात फिर उन्होंने अपने कुछ मित्रों और रिश्तेदारों को गौरी के लिए योग्य वर तलाशने को पत्र लिखे।

(२)

अगला इतवार आया। आज ही बाबू सीताराम जी, गौरी को देखने या अपने आपको दिखाने आवेंगे। बाबू राधाकृष्ण जी ने यह पहिले से ही कह रखा है कि किसी बाहर वाले से कुछ न मालूम पड़े कि कोई गौरी को देखने आया है। अतएव यह बात कुछ गुप्त रखी गयी है। घर के भीतरी आँगन

में ही उनके बैठने का प्रबन्ध किया गया है। तीन कुर्सियों के बीच में एक मेज है, जिसपर एक साफ धुला हुआ खादी का कपड़ा बिछा दिया गया है और एक गिलास में आँगन के ही गुलाब के कुछ फूलों को तोड़कर, गुलदस्ते का स्वरूप दिया गया है। बहुत ही साधारण-सा आयोजन है। सीताराम जी सरीखे व्यक्ति के लिये किसी विशेष आडम्बर की आवश्यकता भी तो न थी।

यथा समय बाबू सीताराम जी अपने बच्चों के साथ आये। बच्चे भी वही खादी के कुरते और हाफपैण्ट पहने थे। न जूता, न मोजा, न किसी प्रकार का ठाट-बाट। वह दोनों बड़े प्रसन्न, बड़े हँस-मुख, आकर घर में वे इस प्रकार खेलने लगे, जैसे इस घर से वे चिर-परिचित हों। कुन्ती एक तरफ बैठी थी। बच्चों के कोलाहल से परिपूर्ण घर उसे क्षण भर के लिये नन्दन-कानन-सा जान पड़ा। उसने मन ही मन सोचा—'कितने अच्छे बच्चे हैं। यदि बिना किसी प्रकार का सम्बन्ध हुए भी सीताराम जी इन बच्चों के सम्हालने का भार उसे सौंपें तो वह खुशी-खुशी ले ले। वह बच्चों के खेल में इतनी तन्मय हो गई कि क्षण भर के लिए भूल गई कि सीताराम जी भी बैठे हैं। उनसे भी कुछ बात करनी है। इसी समय अचानक छोटे बच्चे को जैसे कुछ याद आ गया हो। दौड़कर पिता के पास आया। उनके पैरों के बीच में खड़ा होकर बोला "बाबूजी तुम तो कैते थे न कि माँ को दिकाने ले चलते हैं। माँ कआँ हैं, बतलाओ?"

बाबू ने किंचित् हँसकर कहा—"ये माँजी बैठी हैं, इनसे कहो, यही तुम्हें दिखायेंगी।"

बालक ने मचलकर कहा—"ऊँ हूँ तुम दिकाओ।" और इसी समय एक बड़ी सी सफेद बिल्ली आँगन से होती हुई भीतर भाग

गयी। बच्चे बिल्ली के पीछे सब कुछ भूलकर, दौड़ते हुए अन्दर पहुँच गये। गौरी पिछले बरामदे में चुपचाप खड़ी थी। वह न जाने किस ध्यान में थी। तबतक छोटे बच्चे ने उसका आँचल पकड़कर खींचते हुए पूछा—'क्या तुम अमारी माँ हो ?' गौरी ने देखा हृष्ट-पुष्ट सुन्दर सा बालक, कितना भोला कितना निश्चल। उसने बालक को गोद में उठा कर कहा "हाँ।" बच्चे ने फिर उसी स्वर में पूछा—"अमारे घर चलोगी न ? बाबू तो तुम्हें लेने आये हैं औल हम भी आये हैं।" अब तो गौरी उनकी बातों का उत्तर न दे सकी। पूछा "मिठाई खाओगे", "हाँ खायँगे"—दोनों ने एक ही साथ एक ही स्वर से उत्तर दिया। कुछ ही क्षण बाद कुन्ती ने अन्दर आकर देखा कि छोटा बच्चा गौरी की गोद में और बड़ा उसी के पास बैठा मिठाई खा रहा है। एक निःश्वास के साथ कुन्ती बाहर चली गई और थोड़ी देर बाद ज्योंहीं गौरी ने ऊपर आँख उठाई, उसने माता-पिता दोनों को सामने खड़ा पाया। पिता ने स्नेह के स्वर में पुत्री से कहा—"बेटा जरा बाहर चलो, चलती हो न ?" गौरी ने कोई उत्तर न दिया। उसने बच्चों का हाथ मुँह धुलाया, उन्हें पानी पिलाया, फिर माँ के पीछे-पीछे बाहर चली गई। बच्चे अब भी उसी को घेरे थे। वे उसे छोड़ना ही न चाहते थे। बड़ी मुश्किल से सीताराम जी उन्हें बुलाकर कुछ देर तक अपने पास बिठा सके, किन्तु जरा सा मौका पाते ही वे फिर जाकर गौरी के आसपास बैठ गए। पिता के विरुद्ध उन्हें नालिशें भी दायर करनी थीं, पिता के पास बैठ कर न कर सकते।

छोटे ने कहा—'बाबू हमें कभी खिलौने नहीं ले देते।'

बड़े ने कहा—'मिठाई भी तो कभी नहीं खिलाते।'

छोटा बोला—औल अमें छोलकर दफ्तर जाते हैं। दिन भर नहीं आते, बाबू अच्छे नहीं हैं।

बड़ा बोला—'माँ तुम चलो, नहीं तो हम भी यहीं रहेंगे।' बच्चों की बातों से सभी को हँसी आ रही थी।

कुन्ती ने बच्चों से कहा—'तो तुम दोनों भाई यहीं रह जाओ, बाबू को जाने दो, है न ठीक।'

काफी देर हो गई यह देखकर सीताराम जी ने कहा—'समय बहुत हो चुका है, अब चलूँगा, नहीं तो शाम की ट्रेन न मिल सकेगी। फिर राधाकृष्ण की तरफ देखकर कहा—'आप लोगों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़की तो आपकी साक्षात् लक्ष्मी है। और मैं यह जानता था कि आपकी लड़की ऐसी ही होगी, इसीलिए देखने को नहीं आना चाहता था। फिर कुछ ठहरकर बोले—'और सच बात तो यह है कि मुझे पत्नी की उतनी जरूरत नहीं, जितनी इन बच्चों को जरूरत है एक माँ की। मेरा क्या ठिकाना? आज बाहर हूँ तो कल जेल में। मेरे बाद इनकी देख-रेख करनेवाला कोई नहीं रहता। यही सोच समझकर विवाह करने को तैयार हो सका हूँ। अन्यथा इस उमर में विवाह? कहकर वे स्वयं हँस पड़े।

राधाकृष्ण ने मन ही मन सोचा—'तो मेरी लड़की इनके बच्चों की धाय बनकर जायगी।' कुन्ती ने सोचा—'कोई भी स्त्री ऐसे बच्चों का लालन-पालन कर अपना जीवन सार्थक बना सकती है।' गौरी ने मन-ही-मन इस महापुरुष के चरणों में प्रणाम किया और बच्चों की ओर ममता भरी दृष्टि से देखा। यह दृष्टि कह रही थी कि किसी विलासी युवक की पत्नी बनने से अधिक मैं इन भोले-भाले बच्चों की माँ बनना पसन्द करूँगी।

सीतारामजी को जाने के लिए प्रस्तुत देख बच्चे फिर गौरी से लिपट गये। यदि राधाकृष्ण झूठ ही सही, एक बार भी कहते कि बच्चों को छोड़ जाओ तो सीताराम जी बच्चों को छोड़ कर चले जाते। परन्तु इस ओर से जब ऐसी कोई बात न हुई तो बच्चों को सिनेमा, सरकस और मिठाई का प्रलोभन देकर बड़ी कठिनाई से गौरी से अलग करके वे ले जा सके। जाते समय सीतारामजी को पक्का विश्वास था कि विवाह होगा, केवल तारीख निश्चित भर करने की देर है।

(३)

सीतारामजी उस पत्र की प्रतीक्षा में थे जिसमें विवाह की निश्चित तारीख लिखकर आनेवाली थी। देश की परिस्थिति, गवर्नमेण्ट का रुख और महात्माजी के वक्तव्यों को पढ़कर, वे जानते थे कि निकट भविष्य में फिर सत्याग्रह संग्राम छिड़नेवाला है। न जाने किस दिन उन्हें फिर जेल का मेहमान बनना पड़े। पिछली बार जब गये थे तब उनकी बूढ़ी बूआ थीं, पर अब तो वे भी नहीं रहीं। यह कहारिन क्या बच्चों की देख-भाल कर सकेगी? बच्चों की उन्हें बड़ी चिन्ता थी। और बच्चे भी सदा ही माँ-माँ की रट लगाये रहते थे। उन्होंने फिर एक पत्र बाबू राधाकृष्ण को शीघ्र ही तारीख निश्चित करने के लिए लिख भेजा। उधर राधाकृष्णजी दूसरी ही बात तै कर रहे थे। उन्होंने सीतारामजी के पत्र के उत्तर में लिख भेजा कि गौरी की माँ पुराने ख्याल की है वे बिना जन्मपत्री मिलवाये, विवाह नहीं करना चाहती, अतएव आप अपनी जन्मपत्री भेज दें। पत्र पढ़ने के साथ ही सीताराम जी को यह समझते देर न लगी कि यह विवाह न करने का केवल बहाना माना है। किन्तु फिर भी उन्होंने जन्म-पत्री भेज दी। जन्म-पत्री भेजने के कुछ ही दिन

बाद उत्तर भी आ गया कि जन्म-पत्री नहीं मिलती, इसलिये विवाह न हो सकेगा। क्षमा कीजिएगा।

बाबू राधाकृष्ण को गौरी के लिए दूसरा बर मिल गया था, जो उनकी समझ में गौरी के बहुत योग्य था। धनवान ये भी अधिक न थे।, पर अभी-अभी नायब तहसीलदारी पद पर नियुक्त हुए थे। आगे और भी उन्नति की आशा थी। बी० ए० पास थे। देखने में अधिक सुन्दर न थे। बदशकल भी कहे जा सकते थे। पर पुरुषों की कहीं सुन्दरता देखी जाती है। उमर कुछ अधिक न थी, यही २४, २५ साल। लेन-देन का कुछ झगड़ा यहाँ भी न था। पहली शादी थी और माँ-बाप, भाई बहन से भरा पूरा परिवार था। राधाकृष्ण इससे अधिक चाहते ही क्या थे। ईश्वर को उन्होंने कोटिशः धन्यवाद दिया, जिसकी कृपा से ऐसा अच्छा बर उन्हें गौरी के लिए मिल गया।

विवाह आगामी आषाढ़ में होना निश्चित हुआ। दोनों तरफ से विवाह की तैयारी हो रही थी। वे बड़ी तन्मयता के साथ गहने-कपड़ों का चुनाव करते थे। सोचते थे—देर में शादी हुई तो क्या हुआ? बर भी तो कितना अच्छा ढूँढ़ निकाला है। कुन्ती भी बहुत खुश थी। उसकी आखों में वह दृश्य झूलने लगता था कि उसका दमाद छोटा साहब हो गया है। बेटी दमाद छोटे छोटे बच्चों के साथ उससे मिलने आये हैं। किन्तु बच्चों की बात सोचते ही उसे सीतारामजी के दोनों बच्चे तुरन्त याद आ जाते और आ जाती उनकी बात। बच्चों की देख-रेख करनेवाला कोई नहीं है। फिर वह सोचती उहँ दुनियाँ में और भी तो लड़कियाँ है। कर ले शादी, क्या मेरी गौरी ही है। इस प्रकार पति-पत्नी दोनो ही प्रसन्न थे। पर गौरी से कौन पूछता कि उसके हृदय में कैसी हलचल मची रहती है। रह-रहकर उसे उन बच्चों

का भोला-भाला मुँह और मीठी-मीठी बोल याद आ जाती और साथ ही यदि आ जाती विनयी, नम्र और सादगी की प्रतिमा सीताराम जी। उनकी याद आते ही श्रद्धा से गौरी का माथा अपने आप ही झुक जाता। देश-भक्त त्यागी वीरों के लिए उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। सीताराम जी ने भी तो देश के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है। नहीं तो बी० ए० पास करने के बाद क्या प्रयत्न करने पर उन्हें नायब तहसीदारी न मिल जाती? मिलती क्यों नहीं? पर सीताराम जी सरकार की गुलामी पसन्द करते तब न? दूसरी ओर थे उसके होने वाले पति नायब तहसीलदार साहब, जिन्हें अपने आरम्भ, अपने देश के लिए, ब्रिटिश गवर्नमेंट के जरा से इंगित मात्र पर निरीह देशवासियों के गलेपर छुरी फेरने में जराभी संकोच या हिचक नहीं। जिनके सामने कुछ चाँदी के टुकड़े फेंक दिये जाते हैं। और वह दुम हिलाते हुए निंद्य से निंद्य कर्म करने में भी किंचित लज्जित नहीं होते। घृणा से गौरी का जी भर जाता। किन्तु उसके इन मनोभावों का जाननेवाला यहाँ कोई भी न था। वह रात-दिन एक प्रकार की अव्यक्त पीड़ा से विकल-सी रहती। बहुत चाहती थी कि अपनी माँ से कह दे कि वह नायब तहसीलदार से शादी न करेगी, किन्तु लज्जा उसे कुछ न कहने देती। ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि नजदीक आती, गौरी की चिन्ता बढ़ती ही जाती थी।

विवाह की निश्चित तारीख से १५ दिन पहले एक दिन तार आया कि नायब तहसीलदार साहब के पिता का देहान्त हो गया। इस मृत्यु के कारण विवाह साल भर को टल गया। गौरी के माता-पिता बड़े दुखी हुए, किन्तु गौरी के सिरपर से जैसे चिन्ता का पहाड़-सा हट गया।

(४)

इसी बीच सत्याग्रह आन्दोलन की लहर सारे देश भर में बड़ी तीव्र गति से फैल गई। शहर-शहर में गिरफ्तारियों का ताँता-सा लग गया। रोज ही न जाने कितने गिरफ्तार होते, कितनों की सजा होती। कहीं लाठीचार्ज, कहीं १४४। सरकार की दमन की चक्की बड़े भयंकर रूप से चल रही थी। गौरी को चिन्ता थी उन बच्चों की। जब से सत्याग्रह-संग्राम छिड़ा था, तभी से उसे फिकर थी कि न जाने कब सीताराम जी गिरफ्तार हो जायँ। और फिर वे बच्चे बिचारे, उन्हें कौन देखेगा? रोज का अखबार ध्यान से पढ़ती और कानपुर का समाचार तो और ध्यान से देखती थी। और इसी प्रकार एक दिन उसने पढ़ा कि राजद्रोह के अपराध में सीताराम जी गिरफ्तार हो गए। और उन्हें एक साल का सपरिश्रम कारावास हुआ। इसी समाचार को पढ़कर गौरी कुछ क्षण तक स्तब्ध-सी खड़ी रही। फिर कुछ सोचती हुई टहलने लगी। कुछ ही देर बाद उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। वह माँ के पास गई। माँ कोई पुस्तक देख रही थी। उसने अपने सारे साहस को समेटकर दृढ़ता से कहा—"माँ, मैं कानपुर जाऊँगी।"

"कानपुर में क्या है"? आश्चर्य से कुन्ती ने पूछा।

गौरी—"वहाँ बच्चे हैं।"

माँ ने उसी स्वर में कहा—"बच्चे? किसके बच्चे? कैसी बातें करती है गौरी, पागलों की-सी।"

गौरी—"नहीं माँ मैं पागल नहीं हूँ। बच्चों को तुम भी

जानती हो उनके पिता को राजद्रोह के मामले में साल भर की सज़ा हो गई है। बच्चे छोटे हैं। मैं जाऊँगी माँ। मुझे जाना ही पड़ेगा।"

गौरी के स्वभाव से कुन्ती भलीभाँति परिचित थी वह जानती थी कि गौरी जिस बात की हठ पकड़ती है, कभी छोड़ती नहीं। अतएव सहसा वह गौरी का विरोध न कर सकी, बोली—"पर तेरे बाबूजी तो बाहर गये हैं। उन्हे तो आ जाने दो।"

पर गौरी ने दृढ़ता के साथ कहा—"बाबूजी के आने तक नहीं ठहर सकूँगी माँ। मुझे जाने दो। रास्ते में मुझे कुछ कष्ट न होगा। अब मैं काफी बड़ी होगयी हूँ।

और उसी दिन शाम को एक नौकर के साथ गौरी कानपुर चली गई।

साल भर बाद—

अपनी सजा पूरी करके सीताराम जी घर लौटे। इस साल भर के भीतर उन्होंने एक बार भी बच्चों को न देखा था। उन्हें कायदे के अनुसार हर महीने उनका कुशल समाचार मिल जाता था। पर लगातार उन्हें बच्चों की चिन्ता बनी ही रहती थी। जिस कहारिन के भरोसे वे बच्चों को छोड़ गये थे, उसके भी तीन-चार बच्चे थे। वह बच्चे को कैसे रखेगी सो सीताराम जी जानते थे। पर विवशता थी क्या करते। सबेरे-सबेरे ६ बजे ही जेल से मुक्त कर दिए गए। एक ताँगा पर बैठकर वे घर की ओर चले। जेब में कुछ पैसे थे। एक जगह गरम-गरम जलेबियाँ बन रही

थीं। बच्चों के लिये थोड़ी-सी खरीद लीं। घर के दरवाजे पर पहुँचे। दरवाजा खुला था। पर घर के अन्दर पैर रखने में हृदय धड़कता था न जाने बच्चे किस हालत में हों। वे चोरों की तरह चुपके-चुपके घर में घुसे। परन्तु यह क्या। आँगन में पहुँचते ही वे ठगे-से खड़े रह गये। फिर जरा आगे बढ़कर उन्होंने कहा—आप ? और गौरी ने झुककर उनकी पदधूलि माथे से लगा ली।
